सीमित वितरण हेतु प्रकाशित

देखी सुनी

वर्ष 2013, अंक 26

प्रिय साथियों

अपने इस त्रैमासिक संकलन के द्वारा हम प्रयास कर रहे है स्त्री विरोधी हिंसा की जड़ो तक पहुचने का, जिसमें शामिल है महिला हिंसा का लैंगिक पक्ष, महिलाओं से संबन्धित कानून, महिला सुरक्षा से संबन्धित प्रावधान, बाल यौन हिंसा, सौंदर्य के पितृसत्तामक प्रतिमान, राज्यों की खाद्य सुरक्षा योजनाऐं, भूमि अधिग्रहण पर नज़रियां और अंत में जस्टिस वर्मा, असगर अली इंजिनियर, वीना मजूमदार और शर्मिला रेगे के हमारे बीच ना रहने का शोक।

आशा है हमारा ये अंक आपके कार्यो में सहयोगी संदर्भ सामग्री साबित होगा। कृप्या अपने अनुभव व प्रतिक्रिया हमसे अवश्य बांटे।

नीतू रौतेला
जागोरी संदर्भ समूह

स्त्री विरोधी हिंसा की जड़ें

विकास नारायण राय

क्या महिलाओं को अपने दैनिक जीवन में हिंसा से मुक्ति मिल सकती है? संसद, मीडिया, पुलिस, न्यायपालिका की लगातार घोर सक्रियता के बावजूद, दुर्भाग्य से, जबाव 'नहीं' में ही बनता है। 'नहीं' अकारण नहीं है।

मुख्य कारण यह है कि उपर्युक्त सक्रियता महज यौनिक हिंसा रोकने पर केंद्रित रही है। लैंगिक हिंसा, जो यौनिक हिंसा की जड़ है, से सभी ने कन्नी काट रखी है। विफलता का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है कि यौनिक हिंसा से निपटने के नाम पर उन्हीं आजमाए हुए उपायों को मजबूत किया गया है जो पहले भी अप्रभावी या अल्पप्रभावी रहे हैं।

सोलह दिसंबर के दिल्ली सामूहिक बलात्कार कांड के शोर और धिक्कार के बीच राज्य ने वर्मा समिति को आधार बना कर सजाएं और प्रक्रियाएं कठोर बना अपनी दंड-शक्ति में वृद्धि की है; पुलिस और न्यायपालिका के बीच मुकदमे दर्ज करने और सजाएं देने की पेशेवर होड़ देखी जा सकती है; इस मोर्चे पर अधिक से अधिक पुलिस बल झोंकने पर जोर बना है, और अपराध-न्याय व्यवस्था के विभिन्न अंगों को, विशेषकर पुलिस को, उनकी कोताही के लिए अधिक जवाबदेह किया गया है। नतीजा? न सामूहिक बलात्कार कांड कम हुए न अन्य यौनिक हिंसा। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि राज्य की शक्तियों में वृद्धि का मतलब होता है शक्तियों के दुरुपयोग में भी वृद्धि, जिससे कभी समाज का दूरगामी भला नहीं होता। ले-देकर ये तमाम उपाय ऐसे 'स्टेरॉयड' की तरह हैं जो अधिक से अधिक एक तात्कालिक खुशफहमी दे सकते हैं।

महिलाओं को लैंगिक और यौनिक, दोनों वजहों से शोषण का सामना करना पड़ता है। दरअसल, लैंगिक पक्ष कमजोर होने के कारण ही महिला को यौन उत्पीड़न भी सहना पड़ता है। लिहाजा, बिना लैंगिक हिंसा पर चोट किए यौनिक हिंसा पर प्रभावी चोट की ही नहीं जा सकती। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न संबंधी कानून को लीजिए। ये प्रावधान पिछले पंद्रह वर्षों से 'विशाखा' मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के आधार पर लागू हैं। मगर कार्यस्थलों पर यौन-उत्पीड़न बदस्तूर है। इन प्रावधानों ने पीड़ित की उस लैंगिक निरीहता को दूर नहीं किया, जिसके चलते संभावित शिकारी से उसके संबंध बस दब्बू मोल-भाव वाले बने रहते हैं।

अगर यही नियम-कानून बनाए गए होते कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए, तो स्थिति भिन्न होती। क्योंकि तब महिला कार्मिकों को मुख्यधारा के कार्य देना और महत्त्व के निर्णयों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य होता। यानी मोल-भाव में तब उन्हें दबाया नहीं जा सकता। तब ऐसे तमाम रोजमर्रा के मुद्दे भी, जिन्हें उनके अपमान और भयादोहन का साधन बनाया जाता है, महिलाओं की पारिवारिक-सामाजिक सुविधानुसार भी तय होते, न कि किसी की व्यक्तिगत कृपा से। जैसे, अनुकूल पाली, आवास प्राथमिकता, छुट्टी की गारंटी, सुरक्षित आवागमन, स्वास्थ्य जांच, प्रसाधन कक्ष, निजी कक्ष, लैंगिक शिष्टाचार आदि। न तब दबने की जरूरत होती और न यौन-उत्पीड़न की जमीन बन पाती।

क्या हमने कभी सोचा है कि समाज में यौनिक हिंसा की तरह ही स्त्री के प्रति होने वाली आम हिंसा को लेकर हंगामा क्यों नहीं होता? क्योंकि इस हिंसा में हम सभी शामिल हैं। लिहाजा, 'चुप्पी' का षड्यंत्र हम सभी पर हावी है। बेटियों को मां-बाप की संपत्ति से वंचित रखना और पत्नियों की कमाई पर पति का हक जमाना आम है। घरेलू हिंसा के व्यापक तांडव को स्वीकार करने में ही स्वतंत्र भारत को छह दशक लग गए और वर्ष 2006 में जाकर इस पर बने कानून की पेचीदगियों ने उसे महिलाओं के किसी काम का नहीं छोड़ा है। आज भी अधिकतर स्त्रियां शिक्षा, नौकरी, जीवन-साथी आदि मनमर्जी का नहीं चुन सकती, और उन्हें कठोरतम लैंगिक पूर्वग्रहों से लेकर तेजाबी हमलों और पारिवारिक 'सम्मान-हत्याओं' का निशाना बनाया जाता है। तरह-तरह की विधियों, परंपराओं, रीति-रिवाजों आदि के नाम पर औरत की मर्द-आश्रित छवि को बढ़ावा देने में सभी सक्रिय योगदान देते हैं।

सौंदर्य के विरूपित व्यवसायीकरण और स्त्री देह के वस्तुकरण का निर्बाध लाइसेंस है मीडिया के पास। इस लैंगिक हिंसा से पाली-पोसी गई निरुपायता ही स्त्री को यौनिक हिंसा के लिए तैयार करने की भूमिका बनती है।

यौनिक हिंसा की तस्वीर की भयावहता और व्यापकता तो फिर भी आंकड़ों में समेटी जा सकती है, पर लैंगिक हिंसा में तो लगभग शत-प्रतिशत मर्द और पुरुषप्रधान सामाजिक संरचना शामिल है। दरअसल, लैंगिक अभय से भरे मर्द के लिए लैंगिक हिंसा से यौनिक हिंसा पर पहुंचने में एक पतली-सी मनोवैज्ञानिक रेखा ही पार करने को रह जाती है। वह लैंगिक अपराधी तो होता ही है, यौन-अपराधी होना इसी क्रम में अगली कड़ी जैसा हो जाता है। लिहाजा, हर मर्द संभावित यौन-अपराधी है और हर औरत संभावित यौन-शिकार। कुछ हद तक उनका व्यवहार इस बात से भी संचालित होता है कि यौनिकता से उनका परिचय किस रूप में हुआ है।

इसीलिए यौन-अपराधियों या पीड़ितों का कोई परिभाषित रेखाचित्र (प्रोफाइल) नहीं बनाया जा सकता, जैसा कि अन्य गंभीर अपराधों की रोकथाम के लिए पुलिस कर सकती है। घर, बाहर, यात्रा, कार्यस्थल, क्रीड़ांगन, होटल, स्कूल, अस्पताल- सोते-जागते, सुबह-शाम-रात, अंधेरे-उजाले, गली-सड़क, मुहल्ले-गांव, एकांत-पार्टी, बस-ट्रेन-टैक्सी-जहाज, कहीं भी और कभी भी हो सकती है यौन हिंसा। किसी के भी साथ हो सकती है- बच्ची, जवान, अधेड़, बूढ़ी, घूंघटवाली, घरेलू, कामकाजी, पेशेवर, खिलाड़ी। और कोई भी कर सकता है- पिता, भाई, ससुर, अभिभावक, रिश्तेदार, परिचित-मित्र, दुश्मन-अपरिचित, सहपाठी, सहयोगी, सहकर्मी, नेता, डॉक्टर, उद्यमी, अध्यापक, कोच, वैज्ञानिक, धर्माचार्य, पुलिस, वकील, जज, जेलर, पत्रकार, प्रगतिशील, परोपकारी, शिष्ट-अशिष्ट, शिक्षित-अशिक्षित, गंवई-कस्बाई, नगरी-महानगरी, नाबालिग, बालिग, प्रौढ़, बूढ़ा, स्वस्थ, मनोरोगी।

क्या हमने कभी सोचा है कि समाज में यौनिक हिंसा की तरह ही स्त्री के प्रति होने वाली आम हिंसा को लेकर हंगामा क्यों नहीं होता? क्योंकि इस हिंसा में हम सभी शामिल हैं। लिहाजा, 'चुप्पी' का षड्यंत्र हम सभी पर हावी है। बेटियों को मां-बाप की संपत्ति से वंचित रखना और पत्नियों की कमाई पर पति का हक जमाना आम है।

जब यौनिक हिंसा के ऐसे सर्वव्यापी आयाम हैं तो उनसे महज राज्य-शक्ति और पुलिस-उपस्थिति बढ़ा कर और उन्हें जवाबदेह बना कर ही नहीं निपटा जा सकता। इनके अनुपस्थित पूरकों पर भी काम करना होगा। ये पूरक हैं- 'संवेदी पुलिस' और 'सशक्त समाज'। इस संदर्भ में पहले देखें कि सोलह दिसंबर के सामूहिक बलात्कार कांड से उठे तूफान के दौरान किन गंभीर व्यवस्थागत कमियों का खुलासा हुआ था, जिन पर ध्यान देना अनिवार्य है-

एक, यौनिक अपराधों की जमीन तैयार करने वाले लैंगिक अपराधों की प्रभावी रोकथाम पर चुप्पी रही। परिणामस्वरूप सुझाए या लागू किए गए प्रशासनिक और विधिक उपाय यौन अपराधों की रोकथाम पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाए हैं।

दो, परिवार, समाज, मीडिया, राज्य की भूमिका, जो पुरुष की ऐंठ-भरी अभय की स्थिति और स्त्री की समर्पण भरी निरुपायता को मजबूती देती है, विमर्शों के केंद्र में नहीं लाई गई। सारी पहल दंड और जवाबदेही के दायरे में सीमित रखने से शोर तो खूब मचा, पर असल में कोई नई पहल नहीं हुई।

तीन, यौन संबंधी अपराधों को आधुनिकता के मानदंडों और युवाओं के 'डेमोक्रेटिक स्पेस' के मुताबिक नए सिरे से परिभाषित करने की जरूरत काफी समय से है। फिलहाल उनकी भूलों-चूकों को अपराध के दायरे में रखा जा रहा है। लिहाजा, पुलिस और न्याय-व्यवस्था की काफी क्षमता उन यौनिक मसलों को अपराध बनाने पर खर्च हो रही है, जिनका निदान यौन-शिक्षा और काउंसलिंग के माध्यम से होना चाहिए।

चार, यौन अपराधों के व्यक्ति और समाज पर पड़ने वाले असर के निदान की पहल नहीं की गई। मानो इन मामलों में पीड़ित को हर्जाना और दोषी को कारावास या फांसी के अलावा कोई और आयाम हो ही नहीं सकता। जैसे अपने नागरिकों का यौनिकता से स्वस्थ परिचय कराना राज्य की प्राथमिकता में नहीं आता। जबकि समाज का दूरगामी भला इसमें है कि गंभीर यौन अपराधों में पीड़ित पक्ष और दोषी, दोनों का, उनकी अलग-अलग जरूरत के मुताबिक मनोवैज्ञानिक पुनर्वास हो। अन्यथा पीड़ित का जीवन एक बोझ जैसा रहेगा और दोषी भी समाज के लिए खतरा बना रहेगा।

पीड़ित को सदमे से पूरी तरह उबर आने तक और भावी जीवन में भी अगर आवश्यक हो तो यह सुविधा राज्य द्वारा दी जानी चाहिए। इसी तरह दोषी को जेल से रिहा करने की एक पूर्व-शर्त यह भी होनी चाहिए कि वह मनोवैज्ञानिक रूप से समाज में रहने योग्य हो गया है।

पांच, महिलाओं की सुरक्षा और सुविधा के नाम पर कई सतही कदम नजर आए। महिला थाना, महिला बैंक, महिला डाकघर, महिला बस, महिला बाजार आदि। इसी संदर्भ में यौन-स्वीकृति की उम्र बढ़ा कर सारा दोष युवाओं के सिर पर डाल दिया गया, जैसे स्वस्थ यौनिकता से उनका परिचय अभिभावकों की जिम्मेदारी या राज्य की भूमिका में शामिल नहीं। यौन अपराधों के हौए से मुक्ति पाने की कुंजी है महिला सशक्तीकरण। यह उनके लैंगिक पक्ष को मजबूत करने के ठोस उपायों से ही संभव होगा। जैसे, पारिवारिक संपत्ति में हिस्सा न दिए/ लिए जाने पर वह भाग राज्य द्वारा जब्त किया जाए। जैसे, घरेलू हिंसा के आरोपियों को तब तक जेल में रखा जाए जब तक पीड़ित की भावी सुरक्षा की गारंटी न हो जाए; परिवार या कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव को भी दंडनीय बनाया जाए; महिला वस्तुकरण और उन्हें मर्द-आश्रित बनाने वाली प्रथाओं/ चित्रणों पर रोक लगे।

छह, नागरिकों के सामाजिक, कानूनी, जनतांत्रिक अधिकारों के साथ खड़ा रहने में प्रशासन अक्षम दिखा। याद रहे कि एक सशक्त समाज ही अपने कानूनों का सम्मान करता है। कमजोर समाज कानून लागू करने वालों के प्रति अविश्वास से भरा होगा और उनकी विधिवत आज्ञाओं का भी अनादर करेगा। न्यायालय और मीडिया इस बारे में सजग दिखे, पर राज्य की कानून-व्यवस्था की एजेंसियों विशेषकर पुलिस को अभी काफी सफर तय करना है। दरअसल 'सशक्त समाज' के मसले पर सारा तंत्र ही दिशाहीन नजर आता है।

सात, एक जनतांत्रिक व्यवस्था में पुलिस की क्षमता उसके पेशेवर कार्य-कौशल से ही नहीं आंकी जा सकती। उसे नागरिक संवेदी भी होना होगा। इसके लिए पुलिसकर्मी का पेशेवर पक्ष ही नहीं, सामाजिक और व्यक्तिगत पक्ष भी मजबूत करना आवश्यक है। स्त्रियों के प्रति संवेदीकरण नजरिए से ही नहीं, समूचे जनतांत्रिक प्रशासन के संदर्भ में। सोलह दिसंबर के सामूहिक बलात्कार कांड में दिल्ली पुलिस की भूमिका की अगर विवेचना करें तो मामला दर्ज करने, अनजान दोषियों का पता लगाने, उन्हें पकड़ने, जांच पूरी करने, सबूत जुटाने और दोषियों का चालान करने में उन्होंने चुस्ती दिखाई, पर नागरिक-संवेदी दिखने में वे विफल रहे। यह एक अलग तरह के प्रशिक्षण की मांग करता है।

'संवेदी पुलिस' और 'सशक्त समाज' को उन अनिवार्य पूरकों के रूप में लिया जाना चाहिए जिनके बिना महिला-विरुद्ध हिंसा का हौआ दूर नहीं किया जा सकता। 'संवेदी पुलिस' का दो-टूक मतलब है- संविधान अनुकूलित पुलिस। 'सशक्त समाज' का मतलब है ऐसा समाज, जिसके सामाजिक, वैधानिक, जनतांत्रिक अधिकारों का सम्मान सुनिश्चित हो। स्त्री-विरोधी हिंसा से लोहा लेने में यह संवेदी पुलिस की भूमिका के अनुरूप होगा, अगर उनके कार्यक्षेत्र में 'सशक्त समाज' की कवायद भी शामिल कर दी जाए। संवेदी पुलिस और सशक्त समाज एक योजनाबद्ध पहल से ही संभव है।

जनसत्ता 2.5.2013

देशभर में दुष्कर्म रोधी कानून लागू

आपराधिक कानून (संशोधन) विधेयक-2013 को राष्ट्रपति ने दी मंजूरी

अमर उजाला ब्यूरो

- दुष्कर्मी को आजीवन कारावास जो 20 साल से कम नहीं होगा
- तेजाबी हमला करने वाले दोषियों को दस साल की सजा

नई दिल्ली। दिल्ली सामूहिक दुष्कर्म की घटना के खिलाफ देशभर में हुए उग्र विरोध प्रदर्शन आखिरकार रंग लाए। उम्रकैद और मौत की सजा जैसे कड़े प्रावधानों वाला दुष्कर्म रोधी कानून बुधवार से पूरे देश में लागू हों गया है। राष्ट्रपति ने मंगलवार को इस कानून को मंजूरी दी। इसमें दुष्कर्म के अलावा तेजाबी हमले, पीछा करने और घूरने पर कड़ी सजा का प्रावधान किया गया है। एक सरकारी विज्ञप्ति के मुताबिक, यह कानून आपराधिक कानून (संशोधन) विधेयक-2013 के नाम से जाना जाएगा।

उल्लेखनीय है कि दिल्ली सामूहिक दुष्कर्म की घटना के खिलाफ उमड़े जनाक्रोश में ऐसे अपराधों को रोकने के लिए देशभर से कड़े कानून बनाने की मांग उठी थी। इस कानून को लोकसभा ने तमाम संशोधनों के साथ 19 मार्च को, जबकि राज्यसभा ने 21 मार्च को पारित किया था। इसके लिए तीन फरवरी को अध्यादेश जारी किए गए थे। इस कानून के तहत दुष्कर्म जैसे अपराधों में दोषी को सश्रम उम्रकैद का प्रावधान किया गया है, जो किसी भी दशा में 20 साल से कम नहीं होगी। यही नहीं इस तरह के अपराधों के लिए दोबारा दोषी पाए गए अपराधी को फांसी की सजा का प्रावधान भी है। महिलाओं का पीछा करने, ताक-झांक करने व घूरने को भी पहली बार पारिभाषित किया गया है। ऐसे मामलों में पहली बार सिर्फ सख्त चेतावनी देकर छोड़ने के बाद दोबारा इस तरह की हरकत करने पर गैर जमानती अपराध माना जाएगा। वहीं, महिलाओं पर तेजाब से हमला करने वालों को 10 साल की कैद की सजा का प्रावधान है। कानून में सहमति से सेक्स करने की उम्र 18 साल ही रखी है। देश के सभी अस्पतालों को इस कानून के दायरे में लाया गया है। इसमें कहा गया है कि अस्पतालों को दुष्कर्म की शिकार और तेजाबी हमले की पीड़िता को निशुल्क इलाज करना होगा। इसमें लापरवाही बरतने वाले अस्पतालों के लिए दंड का प्रावधान किया गया है। अगर दुष्कर्म पीड़िता स्थायी और अस्थायी रूप से मानसिक और शारीरिक तौर पर अक्षम है तो दुभाषिए या फिर विशेष शिक्षक की मदद से मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में उसके बयान को रिकार्ड किया जाएगा। कार्यवाही की वीडियोग्राफी की जाएगी। कानून बनाने के लिए इसके लिए भारतीय दंड संहिता, अपराध प्रक्रिया संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम और यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा अधिनियम की कई धाराओं में संशोधन किए गए।

अमर उजाला 4.4.2013

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकथाम विधेयक कानून बना

नई दिल्ली, 25 अप्रैल (भाषा)। राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकथाम विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी है। इसके बाद यह विधेयक कानून बन गया है। घर में काम करने वाली महिलाओं को भी इसके दायरे में लाया गया है। इस कानून के तहत इस तरह की शिकायतों को संस्थान की समिति 90 दिन में निपटाएगी। ऐसा नहीं होने पर जुर्माना लगाया जाएगा।

यह विधेयक इस साल फरवरी में संसद में पास हुआ था। इस नए कानून के दायरे में घरेलू नौकरानी और खेत में काम करने वाली श्रमिकों को भी लाया गया है। इस कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करने पर 50 हजार रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। इसमें झूठे या द्वेषपूर्ण आरोपों से सुरक्षा के भी प्रावधान हैं।

जनसत्ता 2.5.2013

रेप मामले में उंगली परीक्षण निजता का हनन

नई दिल्ली (एसएनबी)। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि बलात्कार की शिकार युवती का उंगली परीक्षण उसकी निजता पर सीधा हमला है। वैज्ञानिक युग में इस तरह के परीक्षण से जल्द से जल्द छुटकारा मिलना चाहिए। टेस्ट की सकारात्मक रिपोर्ट का यह मतलब नहीं है कि यौन संबंध युवती की सहमति से बनाए गए।

जस्टिस बीएस चौहान की अध्यक्षता वाली बेंच ने सामूहिक बलात्कार के मुजरिम की याचिका पर निर्णय देते हुए द्विउंगली परीक्षण की विश्वसनीयता और उपयुक्तता पर सवाल उठाए। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जांच एजेंसियों को समझना चाहिए कि ट्रायल उस महिला का नहीं चल रहा जो बलात्कार की शिकार हुई बल्कि अभियुक्त के खिलाफ आरोप साबित करने के लिए मुकदमे को अंजाम दिया जा रहा है। उसने सवाल किया आखिर उंगली परीक्षण से यह कैसे साबित हो सकता है कि युवती या महिला से बलात्कार हुआ या नहीं। इस परीक्षण का बचाव पक्ष अपनी तरह से व्याख्या करते हैं और सकारात्मक रिपोर्ट आने पर महिला के चरित्र पर लांछन लगाया जाता है। बेंच ने सुप्रीम कोर्ट के कई फैसलों का हवाला देते हुए कहा कि महिला भले ही चरित्रवान न हो

■ सुप्रीम कोर्ट ने पूछा, उंगली परीक्षण से यह कैसे साबित हो सकता है कि युवती या महिला से रेप हुआ या नहीं

लेकिन इससे किसी को भी उससे अपनी हवस मिटाने का लाइसेंस नहीं मिल जाता। रेप में महिला के चरित्र पर संदेह करना निरर्थक है।

हरियाणा के जिंद जिले में छठी कक्षा की छात्रा से बलात्कार के मुजरिम राजेश की याचिका को खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 13 साल नौ माह की छोटी सी उम्र में दरिंदों की हवस का शिकार बनी बालिका के चरित्र पर लांछन लगाकर अभियुक्त को बचाने की कोशिश को स्वीकार नहीं किया जा सकता। नाबालिक लड़की से बलात्कार के मामलों में सहमति का सवाल ही नहीं उठता। अगर नाबालिग लड़की ने यौन संबंध के लिए सहमति दी भी है तो भी उसकी हामी का कोई मतलब नहीं है। उसकी सहमति से बनाए गए शारीरिक संबंध कानून की नजर में बलात्कार है।

सुप्रीम कोर्ट ने अपने लगभग एक दर्जन फैसलों का हवाला देते हुए कहा कि पीड़िता के चिकित्सकीय परीक्षण का पैमाना तय करने की जरूरत है। संयुक्त राष्ट्र यौन उत्पीड़न का शिकार महिलाओं की गरिमा और उनके मानवाधिकार को लेकर प्रस्ताव पारित कर चुका है। पीड़िता पर किए जाने वाले परीक्षण के लिए उसकी सहमति आवश्यक है।

रास्ट्रीय सहारा 19.5.2013

आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन)

प्रताड़ित करने पर सख्त सजा

इंसाफ

■ कमलेश जैन
(वरिष्ठ अधिवक्ता, सुप्रीम कोर्ट)

महिलाओं को प्रताड़ित करने पर मिलने वाली सजा में जो संशोधन हुए हैं, वे क्या हैं?

-एक पाठिका

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा-154 में संशोधन, 2013- यदि बलात्कार, तेजाब से जलाने, पीछा करने, अश्लील फोटो खींचने आदि जिन भारतीय दंड संहिता की धाराओं में 2013 में संशोधन हुआ है, की एफआईआर दर्ज करवाने यदि महिला आती है तो उसका बयान महिला पुलिस अधिकारी या कोई महिला अधिकारी ही लेगी।

यदि पीड़िता, जिसके खिलाफ उपरोक्त अपराध किया गया है या ऐसा प्रयास किया गया है, वह खुद स्थायी या अस्थायी तौर पर शारीरिक तथा मानसिक रूप से अपंग है तो ऐसी पीड़िता का बयान या उसके बारे में किसी के द्वारा पीड़िता के घर या उसकी सुविधानुसार जगह पर पुलिस द्वारा एफआईआर दर्ज की जाएगी। यह बयान किसी 'इंटरप्रेटर' या 'स्पेशल एडुकेटर'- भाषा समझने वाला या खास विधा में पारंगत व्यक्ति- बधिर की भाषा- इशारा समझने वाले के सामने होगा।

ऐसे बयान की रिकॉर्डिंग वीडियोग्राफी होगी।

यह बयान न्यायिक अधिकारी के सामने होगा।

धारा-160 में संशोधन किया गया है- 15 वर्ष से कम उम्र की लड़की या 65 वर्ष से ज्यादा की महिला या स्त्री मानसिक या शारीरिक रूप से अपंग स्त्री जोड़ा गया है। पहले इस धारा में मात्र '15 वर्ष से कम उम्र की स्त्री या स्त्री' ही था।

धारा-161- में संशोधन के अनुसार, अब उपरोक्त अपराधों के खिलाफ पीड़ित या उसके सहायकों का बयान महिला पुलिस अधिकारी या कोई महिला अधिकारी के समक्ष होगा।

धारा-164- के अनुसार, उपरोक्त बयान न्यायिक अधिकारी के सामने होंगे- जैसे ही ऐसी घटनाओं की खबर पुलिस को प्राप्त होती है। ऐसे वीडियोग्राफ्ड बयान शारीरिक, मानसिक रूप से अपंग पीड़िता के बयान अदालत में दोबारा एक्जामिनेशन-इन चीफ (पीड़िता या गवाहों के अदालत में ट्रायल के दौरान दिए गए पहले बयान) में नहीं पूछे जाएंगे यानी इन वीडियोग्राफ्ड बयानों कर सीधे क्रास एग्जामिनेशन हो सकेंगे।

धारा-197- तेजाब या ज्वलनशील पदार्थ से जलाने वाले, अश्लील छेड़छाड़ करने वाले, स्टाकिंग या वोयेरिज्म करने वाले, किसी भी प्रकार का बलात्कार करने वाले अपराधी यदि पब्लिक सर्वेंट या 'जनसेवक' हैं- किसी सरकारी पद पर हैं तो उन्हें इन अपराधों में प्रॉसिक्यूट करने वालों को सरकार की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

धारा-273- यौन प्रताड़ना वाले मुकदमों में यह ध्यान रखा जाएगा कि पीड़िता को कभी भी अभियुक्त के सामने रखकर बयान नहीं लिया जाएगा।

धारा-309- ऐसे मुकदमों की ट्रायल रोज-रोज की जाएगी। वकीलों को मुकदमे में समय नहीं दिया जाएगा जब तक कि यह निहायत जरूरी न हो।

उपरोक्त संशोधनों के अलावा, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में भी निम्नलिखित जरूरी संशोधन किए गए हैं।

धारा-53 ए के अनुसार, यौन प्रताड़ना, यौन हिंसा, बलात्कार आदि के सभी मुकदमों में अब पीड़िता से उसके पिछले चरित्र, यौन अनुभव आदि के बारे में कोई सवाल नहीं किए जा सकेंगे, न तो पुलिस दोबारा और न ही अदालत में वकीलों या न्यायिक अधिकारियों द्वारा।

धारा-114 ए के अनुसार, बलात्कार के मामलों में यदि पीड़िता कहती है कि उसने अभियुक्त को अपने साथ शारीरिक संबंध बनाने की सहमति नहीं दी थी तो यह मान लिया जाएगा कि उसकी सहमति किसी भी तरह के यौन संबंध के लिए नहीं थी।

धारा-119 के अनुसार यदि गवाह अपनी भाषा से अदालत में अपनी बात नहीं रख सकता है- गूंगा है तो वह इशारों से, लिख कर अपनी बात अदालत के सामने रख सकता है- खुली अदालत में यही तरीका उसका मौखिक बयान समझा जाएगा। इस बयान की वीडियोग्राफी होगी और गवाह की सुविधा के लिए एक इंटरप्रेटर भी मौजूद होगा। इसी तरह प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेन्सेज एक्ट, 2012 में संशोधित किया गया है कि-

धारा-42- जहां उपरोक्त सारे यौन अपराध स्टाकिंग, अश्लील छेड़छाड़, वायेरिज्म, बलात्कार आदि बच्चों के साथ किये गये हैं तो चि प्रा से आ एक्ट 2012 या आईपीसी में से, जिसमें भी ज्यादा सजा का प्रावधान है, वही सजा अभियुक्त को मिलेगी।

चलते-चलते

इंदौर की जिला अदालत ने 17 मई 2013 को सोहन लाल चौहान को अपनी पत्नी के गुप्तांग में ताला लगाकर रखने के अपराध में 10 वर्ष सश्रम कारावास की सजा दी है। यह अपराधी अपनी पत्नी से बच्चों को वर्षों मिलने नहीं देता था। हालांकि गवाह 'दुश्मन' करार दिये गये थे पर डॉक्टर की गवाही में पीड़िता के अभियोग को सच्चा पाया गया था। पीड़िता ने इस प्रताड़ना से दुखी होकर जहर खा लिया था। शरीर से जहर निकालने के लिए जब डॉक्टर ने चिकित्सा करनी चाही तो इस रहस्य का पता चला। यह घटना चार साल पुरानी थी। पति ने सर्जरी करवा कर पत्नी पर 'चेस्टिटी लॉक' लगवाया था। यह घटना संवेदनाओं को सुन्न कर देने वाली है। इस अमानवीय एवं क्रूर कृत्य को देख डॉक्टर, अदालत तथा समाज के होश उड़ गये।

रास्ट्रीय सहारा 19.5.2013 ■

संकटग्रस्त मध्यम वर्गीय महिलाओं को मिलेगा आशियाना

अल्पकाल के लिए समस्याओं से पीड़ित महिलाएं आश्रय घरों में रह पाएंगी

संजय दुटेजा/एसएनबी

नई दिल्ली। राजधानी में घरेलू हिंसा, बलात्कार या फिर किसी अन्य संकट से जूझ रहीं मध्यम वर्गीय महिलाओं को सरकार अल्पकालिक आशियाना देगी। दिल्ली शहरी आश्रय सुधार बोर्ड तथा महिला एवं बाल विकास विभाग ने इस तरह के दो अत्याधुनिक आश्रय गृह बनाने की योजना को अंतिम रूप दे दिया है और अगले माह ही यह दोनों आश्रयगृह शुरू कर दिए जाएंगे। यह दोनों आश्रय गृह आधुनिक अतिथि गृह की तरह होंगे जहां अतिथियों को दी जाने वाली तमाम सुविधाओं के साथ-साथ भोजन की सुविधा भी होगी। दिल्ली में मध्यम वर्गीय महिलाओं के लिए सरकारी स्तर पर इस तरह का प्रयास पहली बार किया जा रहा है।

- एक माह में शुरू होंगे दो आधुनिक आश्रय गृह
- मध्यमवर्गीय महिलाओं के लिए दिल्ली में पहली बार बनेंगे इस तरह के गृह
- अतिथियों को मिलनेवाली सभी सुविधाएं महिलाओं को उपलब्ध होंगी

राजधानी में समाज कल्याण विभाग तथा महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा हालांकि बेघर महिलाओं के लिए कुछ शेल्टर होम चलाए जा रहे हैं लेकिन वह सभी होम निराश्रित, बेघर तथा बीमार महिलाओं के लिए हैं। घरेलू हिंसा तथा अन्य विपत्तियों का शिकार होने वाली मध्यम वर्गीय महिलाओं के लिए कोई ऐसा आश्रय गृह नहीं है जहां संकट के समय उन्हें सहारा तथा आशियाना मिल सके। मध्यम वर्गीय महिलाओं की इसी समस्या को देखते हुए ही दिल्ली शहरी आश्रय सुधार बोर्ड तथा महिला एवं बाल विकास विभाग ने कारपोरेट-सोशल रिस्पांसबिलिटी के तहत वैल्सपन कंपनी के साथ मिलकर ऐसी महिलाओं को कुछ समय के लिए आशियाना उपलब्ध कराने तथा सहारा देने का निर्णय लिया है।

महिला एवं बाल विकास मंत्री प्रो.किरण वालिया ने बताया कि यह दोनों आश्रय गृह अभी तक चलाए जा रहे अन्य आश्रय गृहों या होम से बिल्कुल अलग होंगे। उन्होंने बताया कि इनके लिए दिल्ली शहरी आश्रय सुधार बोर्ड ने दक्षिणी दिल्ली में सनलाइट कालोनी तथा मध्य दिल्ली में दीन दयाल उपाध्याय मार्ग स्थित माता सुंदरी कालेज के निकट जगह उपलब्ध करा दी है। उन्होंने बताया कि सनलाइट कालोनी में बनने वाले आश्रयगृह में लगभग 50 महिलाओं के रहने की व्यवस्था होगी जबकि माता सुंदरी कालेज में 20 महिलाएं रह सकेंगी। उन्होंने बताया कि दोनों आश्रय गृह का लेआउट प्लान को अंतिम रूप दिया जा रहा है। उन्होंने बताया कि दोनों ही स्थानों पर अभी हॉल बने हुए हैं जिनका पुनुरुद्धार करने के साथ साथ कुछ कमरों, रसोईघर, स्नानगृह, शौचालय आदि का निर्माण किया जाएगा।

उन्होंने बताया कि यह आश्रय गृह केवल अल्पकाल के लिए होंगे ताकि किसी संकट के समय मध्यमवर्ग की महिलाओं को सहारा मिल सके। उन्होंने बताया कि यह आश्रयगृह पूरी तरह व्यावसायिक अतिथिगृह की तरह आधुनिक बनाए जाएंगे लेकिन यह व्यावसायिक नहीं होंगे। इन आश्रयगृहों में महिलाओं की जरूरत का सभी सामान उपलब्ध होने के अलावा फर्नीचर, पलंग, टीवी, अलमारी, शीशा, बिस्तर आदि सुविधाएं उपलब्ध रहेंगी। उन्होंने बताया कि 15 जुलाई तक इन दोनों आश्रयगृहों की शुरुआत कर दी जाएगी।

रास्ट्रीय सहारा 22.6.2013

पीड़ित महिलाओं के लिए बनाए जा सकते हैं वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर

प्रियंवदा सहाय

- भारत ने देशभर में इन केंद्रों को तैयार करने के लिए अल सल्वाडोर से ली है प्रेरणा
- एक ही जगह पर इन महिलाओं के स्वास्थ्य देखभाल, प्रशिक्षण, कौशल विकास और पुनर्वास की हो सकेगी व्यवस्था

नई दिल्ली। दुष्कर्म पीड़ित और शोषण की शिकार महिलाओं को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए देश में वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर को आकार दिया जा सकता है। ऐसे केंद्र को बनाने के लिए भारत ने एक छोटे से देश अल सल्वाडोर से प्रेरणा ली है। इसके तहत एक ही छत के नीचे इन महिलाओं के स्वास्थ्य देखभाल, प्रशिक्षण, कौशल विकास और पुनर्वास की व्यवस्था की हो सकेगी।

महिला एवं बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ ने हाल में ही अल सल्वाडोर में इन केंद्रों का जायजा लिया और देश में भी ऐसे वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर बनाने की इच्छा जाहिर की है। मंत्रालय के एक अधिकारी ने बताया कि तीरथ पीड़ित महिलाओं और वृद्धों की सहायता के लिए अल सल्वाडोर की तर्ज पर वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर बनाने को इच्छुक हैं। उन्होंने बताया कि अल सल्वाडोर में बड़े पैमाने पर चल रहे ऐसे सेंटरों में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य देखभाल के लिए उचित व्यवस्था की गई है। यही नहीं सभी आयु वर्ग की महिलाओं को एक साथ रहने की व्यवस्था भी केंद्र के परिसर में ही होती है। इससे प्रभावित होकर तीरथ ने भारत में भी ऐसे ही सेंटर बनाने में दिलचस्पी दिखाई है।

मंत्रालय के अधिकारी ने कहा कि ऐसी व्यवस्था भारत में होने पर किसी भी तरह की समस्या से जूझ रही महिलाएं इन केंद्रों के जरिए अपना समाधान निकाल सकेंगी। फिलहाल देश में वन स्टॉप क्राइसिस सेंटर की व्यवस्था नहीं है। हालांकि दुष्कर्म पीड़ितों और शोषण की शिकार महिलाओं के लिए सरकारी अस्पतालों में क्राइसिस सेंटर तैयार करने का एक प्रस्ताव मंत्रालय ने जरूर तैयार किया था। यानी पीड़ितों के लिए सरकारी अस्पतालों में बिस्तर आरक्षित करने, एफआईआर दर्ज कराने के लिए पुलिसकर्मी, दवाई और एनजीओ के सदस्यों को रखने का प्रस्ताव तैयार किया गया था। लेकिन अभी तक इसे अंतिम रुप नहीं दिया जा सका है।

अमर उजाला 10.6.2013

दिल्ली पुलिस खोलेगी महिलाओं के लिए रिसेप्शन कम केयर सेंटर

नई दिल्ली(एसएनबी)। राजधानी में घरेलू हिंसा, मारपीट, बलात्कार तथा अन्य घटनाओं की पीड़ित महिलाओं को अब दिल्ली पुलिस भी कुछ समय के लिए आश्रय देगी। दिल्ली पुलिस आठ डीडीए फ्लैटों में महिलाओं के लिए रिसेप्शन कम केयर सेंटर चलाएगी, जिनका संचालन राष्ट्रीय महिला आयोग के सहयोग से किसी एनजीओ के माध्यम से किया जाएगा। उपराज्यपाल तेजेन्द्र खन्ना ने यह घोषणा शुक्रवार को महिला सुरक्षा को लेकर बुलाई गई तिमाही बैठक में की।

- राष्ट्रीय महिला आयोग के सहयोग से एनजीओ करेंगे इन सेंटर का संचालन
- थाना स्तर पर महिला सुरक्षा के लिए होंगी नियमित बैठकें

उपराज्यपाल तेजेन्द्र खन्ना की अध्यक्षता में आज विभिन्न महिला संगठनों तथा पुलिस अधिकारियों की तिमाही बैठक में महिला सुरक्षा से जुडे विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई। उपराज्यपाल कहा कि जिन 8 डीडीए फ्लैटों में यह सेंटर चलाए जाएंगे उन्हें डीडीए दिल्ली पुलिस को लीज पर देगा। घरेलू हिंसा या अन्य किसी वारदात की शिकार हुई महिलाओं को इन सेटरों में कुछ समय के लिए आश्रय दिया जाएगा।

बैठक के दौरान महिला संगठनों की प्रतिनिधियों ने थाना स्तर पर महिलाओं की सुरक्षा को लेकर कोई समन्वय बैठकें न होने की शिकायत की। उन्होंने कहा कि यदि दिल्ली के सभी थानों में नियमित रूप से महिला संगठनों के साथ महिला सुरक्षा पर समन्वय बैठकें हों तो स्थिति में काफी सुधार होगा। महिला संगठनों की इस मांग पर उपराज्यपाल तेजेन्द्र खन्ना ने तत्काल ही दिल्ली पुलिस अधिकारियों को थाना स्तर पर बैठकें शुरू करने के निर्देश दिये। उपराज्यपाल ने महिला संगठनों को आश्वस्त किया कि दिल्ली में महिलाओं की सुरक्षा के जो भी सुझाव आएंगे उनके अनुरूप कदम उठाये जाएंगे। उन्होंने बताया कि दिल्ली पुलिस के स्पेशल कमिशनर ताज हसन अब प्रत्येक माह के अंतिम शुक्रवार को महिला संगठनों के साथ बैठक करेंगे।

रास्ट्रीय सहारा 22.6.2013

जल्द लगेंगे डीटीसी बसों में सीसीटीवी कैमरे

- परिवहन मंत्री की अध्यक्षता में हुई बैठक में हुआ फैसला
- हर ऑटो रिक्शा पर जिला के आधार पर होगी कलर कोडिंग

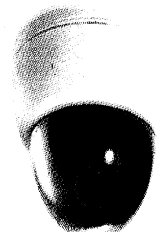

भास्कर न्यूज | नई दिल्ली

महिलाओं के साथ छेड़छाड़, पॉकेटमारी, संवाहक द्वारा असभ्य बर्ताव को देखते हुए डीटीसी बसों में सीसीटीवी कैमरे लगाने का सरकार ने फैसला किया है। इस बारे में अधिकारियों को आदेश भी जारी कर दिए गए हैं। राजधानी की परिवहन व्यवस्था को विश्वस्तरीय बनाने व बेहतर सेवा उपलब्ध कराने के लिए दिल्ली सचिवालय में परिवहन मंत्री रमाकांत गोस्वामी की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय बैठक हुई। इसमें यात्रियों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए बसों, ऑटो चालकों पर नकेल कसने के लिए कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। इस बैठक में गोस्वामी के अलावा दिल्ली पुलिस, डिम्ट्स तथा दिल्ली ट्रैफिक पुलिस के अधिकारी उपस्थित थे।

बैठक के बाद गोस्वामी ने बताया कि दिल्ली की सड़कों पर चलने वाले हर ऑटो का जिले के आधार पर कलर कोड होगा। परिवहन विभाग ऑटो रिक्शा के लिए 6 तरह का कलर कोड तैयार कर रहा है। ऑटो रिक्शा पर कलर कोड लगने के बाद ऑटो चालकों की मनमानी में कमी आएगी। इस स्कीम के लागू होते ही ऑटो रिक्शा चालक दिन में कहीं पर भी जा सकते हैं परन्तु रात में जिस क्षेत्र में वे रहते हैं वहां के सवारी को मना नहीं कर पाएंगे। रात के समय जाने से मना करने वाले ऑटो चालकों की पहचान कलर कोड के आधार पर करते हुए उस पर कड़ी कार्रवाई की जाएगी। ऑटो चालकों द्वारा सवारी से मीटर से नहीं जाकर ज्यादा भाड़ा व बदसलूकी के संदर्भ में परिवहन विभाग को स्पष्ट निर्देश दिए गए है कि वह यातायात पुलिस, डिम्ट्स तथा पुलिस कंट्रोल रूम को मिलाकर एक साझा योजना बनाए। ऑटो पर हेल्पलाइन नंबर लिखने के साथ आपातकालीन पैनिक बटन के प्रयोग को और बेहतर बनाया जाए जिससे यात्रियों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। गोस्वामी ने कहा कि इस बटन के प्रयोग करते ही एक मैसेज डिम्ट्स के कंट्रोल रूम में पहुंचेगा और वहीं से यात्री के मुसीबत में होने की सूचना पुलिस कंट्रोल रूम को भेजने की व्यवस्था की जाएगी।

दैनिक भास्कर 11.6.2013

नहीं लग सकेंगी किसी भी वाहन पर विज्ञापन सामग्री

अब दिल्ली में ऑटो, टैक्सी सहित किसी भी वाहनों पर प्रचार सामग्री नहीं लगाई जा सकेगी। सरकार ने इस आदेश का नोटिफिकेशन जारी करते हुए सभी सार्वजनिक परिवहन वाहनों के मालिकों से अपने वाहनों पर लगी किसी भी प्रकार की लगी प्रचार सामग्री को तुरंत हटाने का आदेश जारी किया है।

स्ट्रीट लाइटों की व्यवस्था करें राज्य

महिला सुरक्षा : शहरी विकास मंत्रालय ने राज्य सरकारों को लिखा पत्र

विनोद श्रीवास्तव/एसएनबी

नई दिल्ली। देश भर में अपराधों खासकर महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों को रोकने के लिए केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों से स्ट्रीट लाइट की प्रभावी व्यवस्था करने को कहा है। केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों को पत्र लिख कर कहा कि अपराधों की रोकथाम और महिलाओं की सुरक्षा के लिए गली-मोहल्लों और सड़कों पर स्ट्रीट लाइट की समुचित व्यवस्था की जाए। इस सुझाव पत्र में कहा गया है कि स्ट्रीट लाइट रोशन होने से अपराधी अपराध करने से डरेंगे। महिलाओं में सुरक्षा का भाव भी पैदा होगा। केंद्र सरकार का मानना है कि स्ट्रीट लाइट की समुचित व्यवस्था होने से महिलाओं में डर कम होगा। अपराध होने की स्थिति में आरोपी की पहचान आसान हो सकेगी।

इस आशय का सुझाव पत्र केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय के सचिव डॉ. सुधीर कृष्णा ने सभी राज्य सरकारों को लिखा है। उन्होंने राज्यों के शहरी विकास सचिवों को लिखे पत्र में सुप्रसिद्ध अमेरिकी जज लुईस ब्रेंडिस के कथन का हवाला दिया है कि जिस प्रकार सूरज की रोशनी कीटाणु को नष्ट करने के लिए होती है, उसी प्रकार बिजली की रोशनी अपराध को रोकने में सहायक होती है। साथ ही, उन्होंने दिल्ली में दिसम्बर में हुई सामूहिक ब्लात्कार की घटना और उस पर कानून में सुधार के लिए बनाई गई जस्टिस वर्मा कमेटी के उस उल्लेख का जिक्र किया है, जिसमें कहा गया है कि महिलाओं की सुरक्षा को लेकर स्ट्रीट लाइट बेहद जरूरी है। केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय के तत्वावधान में जनवरी माह में हुई राज्य सरकारों के सचिवों की बैठक में यह फैसला किया गया था कि सार्वजनिक स्थलों पर स्ट्रीट लाइट को बढ़ाना देना होगा ताकि रोशनी के डर से अपराधी अपराध करने से खौफ खाएं। केंद्र ने राज्य सरकारों को सुझाव दिया है कि स्थायीय निकायों से संबंधित सभी एजेंसियां समय-समय पर इसकी समीक्षा करें कि जहां-जहां स्ट्रीट लाइट जरूरी हो वहां-वहां उसकी समुचित व्यवस्था की जाए। राज्य सरकारों को सुझाव दिया गया है कि वे इस तरह की नई तकनीक वाली स्ट्रीट लाइटों की व्यवस्था करें, जिनमें ऊर्जा की बचत होती है, जिससे कि उन पर स्ट्रीट लाइट को लेकर ज्यादा बोझ न पड़े।

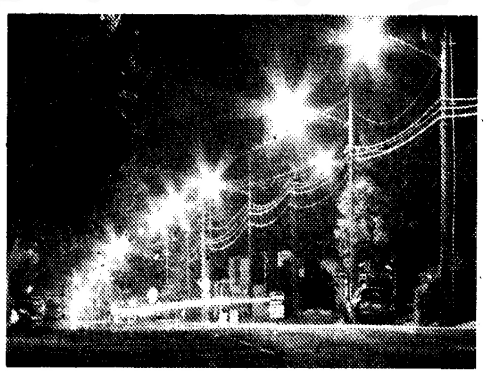

- कहा-स्ट्रीट लाइट की समुचित व्यवस्था होने से महिलाओं के प्रति रुक सकेंगे अपराध

उन्होंने राज्यों को बताया है कि ऊर्जा मंत्रालय के ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशियेंसी ने नई तकनीक की स्ट्रीट लाइटों को लेकर एक दिशा-निर्देश भी तैयार किया है, जिसका लाभ लिया जा सकता है। उन्होंने उम्मीद जाहिर की है कि राज्य सरकारें महिलाओं की सुरक्षा को लेकर तमाम सुझावों को अमल लाएंगी और स्ट्रीट लाइट जैसी व्यवस्था को मजबूत करेंगी।

रास्ट्रीय सहारा 19.5.2013

बीमार मानसिकता के अपराध

सुभाष गाताडे

महेश (बदला हुआ नाम), जो अब किशोरावस्था पार करने को है, के साथ पूर्वी दिल्ली में एक पुलिस कांस्टेबल द्वारा किए यौन अत्याचार की घटना को पांच साल पूरे होने को हैं। बिहार का निवासी महेश पिछले साल भर में दिल्ली के पांच चक्कर लगा चुका है, मगर आलम यह है कि अभी मामले की सुनवाई शुरू तक नहीं हुई है। उसका मामला बच्चों के लिए बनी अदालत में पहुंचा ही नहीं है।

सीमा (नाम बदला हुआ) बारह साल की थी, जब पूर्वी दिल्ली के प्रीत विहार इलाके से उसका अपहरण कर लिया गया और उसके साथ सामूहिक बलात्कार हुआ। पुलिस ने उसे बेहद दर्दनाक स्थिति में पाया था। उसे सामान्य अवस्था में पहुंचाने के लिए लंबी काउंसलिंग की जरूरत पड़ी थी। चार साल बीत गए, मगर अभी उसके मामले की सुनवाई कड़कड़डूमा अदालत में धीमी गति से चल रही है।

वर्ष 2010 में दिल्ली उच्च अदालत के निर्देश के बाद बच्चों के लिए विशेष अदालतें कायम करने वाली पहली राज्य सरकार के तौर पर दिल्ली सरकार ने काफी तालियां बटोरी थीं। दिल्ली के विभिन्न इलाकों में ऐसी ग्यारह अदालतें कायम हुई थीं।

यह कहा गया था कि दिल्ली की विभिन्न अदालतों में लंबित सभी मामले इन अदालतों में स्थानांतरित कर दिए जाएंगे। मगर जैसा कि सूचनाधिकार के तहत मांगी गई जानकारी से स्पष्ट होता है, अब तक बच्चों से संबंधित सभी मामले इन विशेष अदालतों में नहीं पहुंचे हैं, लाजिम है न्याय पाना तो दूर की बात रही। इन ग्यारह अदालतों में पहुंचे पांच सौ छब्बीस मामलों में से एक सौ इक्यासी में फैसला आ चुका है, मगर कई मामले ऐसे भी लंबित हैं जो आठ साल पहले दायर किए गए थे।

निश्चित ही इंसाफ से इनकार के मामले में दिल्ली अपवाद नहीं कही जा सकती। पिछले दिनों बंगलूर में 'साथी' नामक संस्था द्वारा ऐसे एक सौ पचास मामलों के नतीजे- जो तीन साल पुराने थे- मीडिया के एक हिस्से में प्रकाशित हुए। इनमें कुछ ऐसे भी थे जो सात साल पुराने थे। अत्याचार के शिकार कुछ लोगों की शादी भी हो चुकी थी, मगर अब भी मामले में निर्णय नहीं आ सका है।

अब उसी बंगलूर का एक किस्सा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुर्खियों में है। मुमकिन है तमाम लोगों ने वह खुला खत पढ़ा हो जो सुजा जोंस ने लिखा है और जो विभिन्न वेबसाइटों और ब्लॉगों पर ही नहीं, सोशल नेटवर्क के जरिए भी हजारों लोगों तक पहुंचा है। ये वही सुजा जोंस हैं, जिन्होंने अपनी तीन साल की बेटी के साथ बलात्कार करने के आरोप में अपने फ्रांसीसी मूल के पति के खिलाफ बंगलूर की अदालत में मुकदमा कायम किया है और जो बेटी को न्याय दिलाने के लिए बेहद कठिन और एकाकी संघर्ष कर रही हैं।

विडंबना यह है कि फ्रांसीसी अधिकारियों ने बंगलूर के दूतावास में कार्यरत अपने इस नागरिक का न केवल लगातार समर्थन किया और तीन संतानों की इस मां को लगभग अकेला छोड़ दिया है, फ्रांसीसी मीडिया ने भी इस घटनाक्रम का एकांगी वर्णन किया है। यही नहीं, भारतीय पुलिस और पुरुषों के अधिकारों के लिए संघर्षरत कहे जाने वाले लोगों ने भी सुजा को ही 'अपराधी' साबित करने की कोशिश की है। यह भी पता चला है कि डॉक्टरों पर दबाव डाल कर रिपोर्ट बदलवाने की कोशिश की गई और गवाहों पर दबाव डाला गया कि वे अपने बयान वापस लें। पुलिस की फाइल से भी कुछ जरूरी सबूत गायब हो जाने की खबर मिली है। बेटी के साथ यौन अत्याचार की बाबत लिए गए डीएनए नमूने भी गायब हैं। अदालत के सामने डीएनए परीक्षण की जिन रिपोर्टों को रखा गया उनमें न पिता और न ही बेटी के डीएनए नमूने पेश किए गए हैं।

यहां गौरतलब है कि अब जबकि प्रस्तुत मामले की सुनवाई होने जा रही है, तमाम प्रबुद्ध और जनतांत्रिक अधिकारों के हिमायतियों ने एक याचिका तैयार कर उस पर तमाम लोगों के दस्तखत इकट्ठा करने की मुहिम छेड़ी है, ताकि सुजा और उसकी बेटी को न्याय मिल सके। इन संगठनों और लोगों ने अपने स्तर पर लगातार प्रयास भी जारी रखा है जिससे मामले पर रोशनी डाली जा सके। मसलन, जिन दिनों फ्रांस के राष्ट्रपति भारत यात्रा पर आए थे, उनसे मिल कर गुजारिश की गई कि वे दोनों पक्षों के प्रति समान व्यवहार करें।

यह बात भी रेखांकित की गई कि किस तरह फ्रांसीसी अधिकारी समूचे मामले में पक्षपातपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, जिन्होंने सुजा और उनके पति के साझा खाते से भी रकम निकलवा लेने में हिरासत में पड़े उनके पति की सहायता की ताकि सुजा को आर्थिक दिक्कतों का सामना करना पड़े।सुजा जोंस और उनकी बेटी को न्याय पाने के लिए जो संघर्ष करना पड़ रहा है उससे बरबस पिछले दिनों 'ह्यूमन राइट्स वाच' की तरफ से जारी बयासी पेज की रिपोर्ट 'ब्रेकिंग द साइलेंसः चाइल्ड सेक्सुअल एब्युज इन इंडिया' को संदर्भित करना जरूरी जान पड़ रहा है।

प्रस्तुत रिपोर्ट तैयार करने के लिए परिमाणात्मक विश्लेषण के बजाय केस स्टडी का सहारा लिया गया है, ताकि बाल यौन अत्याचार मामलों में सरकारी कार्यप्रणाली की पड़ताल की जा सके। इसके लिए 'ह्यूमन राइट्स वाच' ने पीड़ितों, उनके माता-पिताओं, रिश्तेदारों या बाल अधिकार रक्षा के लिए सक्रिय अधिकारियों आदि से सौ से अधिक साक्षात्कार लिए, जिन्होंने ऐसी घटनाओं में सीधे हस्तक्षेप किया।

रिपोर्ट इस विस्फोटक तथ्य को उजागर करती है कि किस तरह भारत में बाल यौन अत्याचार घरों, स्कूलों और बच्चों की देखरेख के लिए बनी आवासीय सुविधाओं में आम है। गौरतलब है कि यौन हिंसा के मामले में कानूनी और नीतिगत सुधार सुझाने के मकसद से गठित हुई न्यायमूर्ति वर्मा समिति ने भी साफ बताया था कि बाल सुरक्षा गृह अपने घोषित लक्ष्यों को पूरा करने में विफल रहे हैं। रिपोर्ट के मुताबिक बच्चों को यौन प्रताड़ना से बचाने और पीड़ितों के उपचार के मामले में सरकारी प्रतिक्रिया नाकाफी है।

उसके मुताबिक डरावनी चिकित्सीय जांच और पुलिस तथा अन्य अधिकारियों के रुख के चलते पीड़ित को दुबारा यातना का सामना करना पड़ता है। विडंबना यह है कि बाल यौन अत्याचार के मामले में अब भी मध्ययुगीन मार्का 'फिंगर टेस्ट' का इस्तेमाल होता है ताकि यह 'सुनिश्चित' किया जा सके कि अत्याचार हुआ है या नहीं। शायद समूची दुनिया में भारत एकमात्र देश होगा, जो ऐसे वाहियात टेस्ट पर भरोसा करता है, जिसका कोई बैज्ञानिक प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है।

रिपोर्ट में कुछ घटनाओं की जानकारी उदाहरण के तौर पर दी गई है। जैसे, सोलह साल की नेहा पर गांव के दो लोगों ने अत्याचार किया और जब वह थाने पहुंची तो पुलिस वालों ने उसकी रिपोर्ट लिखने से साफ मना कर दिया। बारह वर्षीय कृष्णा की शिकायत लिखने से मना करते हुए पुलिस ने उसे बारह दिन की गैर-कानूनी हिरासत में रखा।

एक तरफ अत्याचार-पीड़ित बच्चों के साथ विलंबित न्याय- जिसे एक तरह से न्याय से इनकार ही कहा जा सकता है- की सच्चाई और दूसरी तरफ उनके साथ यौन अत्याचार, अपहरण, खरीद-फरोख्त आदि विभिन्न किस्म के अपराधों में एक साल के अंदर चौबीस फीसद बढ़ोतरी। ये तथ्य हमारे समाज के बारे में क्या बताते हैं!

यौन हिंसा की इतनी घटनाएं और विभिन्न प्रकार सामने आने पर भी माता-पिता और परिवार चेतने को तैयार नहीं हैं। लोगों को अब भी यह किसी दूसरी दुनिया की समस्या लगती है। इसलिए वे न तो अपने बच्चों को सचेत करने की जरूरत समझ रहे हैं और न ही उत्पीड़क को उसके किए की सजा मिल पा रही है।

अभी ज्यादा दिन नहीं हुए जब छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके के कांकेर जिले की कन्या आश्रमशाला में गार्ड और अध्यापकों द्वारा वहां रह रही आदिवासी बच्चियों के साथ किए गए यौन अत्याचार का किस्सा सामने आया था। उपरोक्त मामले में राज्य प्रशासन की भयानक लापरवाही उजागर हुई।

सन 2012 की शुरुआत में राजस्थान के उदयपुर के आदिवासी संभाग में बनी ऐसी ही एक आश्रमशाला पर केंद्रित समाचार छपा था, जब वहां कार्यरत अध्यापक को बच्चियों के यौन उत्पीड़न के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। गोवा के एक स्कूल में सात वर्षीय बच्ची के साथ प्रिंसिपल के कमरे में देखे गए एक व्यक्ति ने बलात्कार किया। इस मामले में बच्ची द्वारा तमाम सुराग दिए जाने के बावजूद अपराधी को पकड़ा नहीं जा सका है।

इस बात को रेखांकित करना जरूरी है कि भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत बलात्कार को गंभीर अपराध अवश्य समझा जाता है, मगर यह कानून बाल यौन अत्याचार को लेकर अधिक स्पष्ट नहीं है। इसी वजह से एक विशिष्ट कानून 'पोकसो' (प्रिवेंशन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल आफेनसेस एक्ट, 2012) बना है, जिसमें बच्चों के हितों को ध्यान में रखते हुए चीजों को परिभाषित किया गया है। ऐसे मामलों में सजा को अधिक सख्त बनाया गया है, जिनमें बच्चा अपराधी पर निर्भर हो, उस पर भरोसा रखता हो। ऐसे मामलों में उम्रकैद की सजा भी मुकर्रर की गई है।

बाल सुरक्षा के अंतरराष्ट्रीय मानदंडों को देखते हुए ऐसे अत्याचारों की खबर देना अनिवार्य बनाया गया है। जानकारी छिपाने वाले को भी छह माह की सजा हो सकती है। कुछ साल पहले भारत सरकार के समाज और बाल कल्याण मंत्रालय ने खुलासा किया था कि तिरपन प्रतिशत बच्चे यौनहिंसा के शिकार होते हैं। यह भी उजागर हुआ कि बच्चे बड़ों द्वारा, गुरुजनों, रिश्तेदारों द्वारा तो पीड़ित हैं ही, वे पर्यटकों द्वारा और धार्मिक आस्था के नाम पर भी यौन अत्याचार झेलते हैं। इसमें कभी-कभी उनसे थोड़े बड़े बच्चे भी अत्याचारी बनते हैं। यानी बचपन में ही खेल-खेल में वे दूसरे को गंभीर आघात पहुंचाते हैं, जिसका साया जिंदगी भर पीड़ित बच्चे के साथ रहता है।

बच्चों के आक्रामक व्यवहार के कारणों की खोजबीन होनी चाहिए। उन्हें कैसे शुरू से विपरीतलिंगी के प्रति संवेदनशील बनाया जाए, इस पर भी काम किया जाना चाहिए। लेकिन उससे व्यापक और गंभीर मुद्दा है बच्चों के खिलाफ बड़ों द्वारा होने वाले अपराध। जैसे-जैसे एड्स के प्रति जागरूकता बढ़ी है और दुनिया के कई विकसित देशों में बच्चों का इस्तेमाल आसान नहीं है, वे लोग हमारे जैसे तीसरी दुनिया के देश में पहुंचते हैं जहां बच्चों को अपना शिकार बना लेते हैं। दूसरा गंभीर सवाल हमारे परिवेश का है जिसमें बीमार मानसिकता पलती है।

यौन हिंसा की इतनी घटनाएं और विभिन्न प्रकार सामने आने पर भी माता-पिता और परिवार चेतने को तैयार नहीं हैं। लोगों को अब भी यह किसी दूसरी दुनिया की समस्या लगती है। इसलिए वे न तो अपने बच्चों को सचेत करने की जरूरत समझ रहे हैं और न ही उत्पीड़क को अपने किए की सजा मिल पा रही है। जनसत्ता 2.5.2013

इस साल खोए 650 नाबालिग बच्चों में 403 लड़कियां

- **सबसे ज्यादा 106 बच्चे बाहरी दिल्ली और दक्षिण पूर्व दिल्ली से लापता हुए**
- **बाहरी दिल्ली से लापता बच्चों में 65 फीसदी लड़कियां**

प्रदीप सुरीन | नई दिल्ली

हाल में पांच वर्षीय बच्ची के साथ दुष्कर्म की घटना से दिल ली के लोग उत्तेजित हैं मगर केंद्रीय गृह मंत्रालय को भेजी गई दिल्ली पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार राजधानी में रोजाना औसतन चार बच्चियां गायब हो रही हैं। एक जनवरी से 22 अप्रैल तक के आंकड़ों के मुताबिक अब तक 650 नाबालिगों के गुमशुदा होने की रिपोर्ट लिखवाई गई है जिनमें 403 लड़कियां हैं। पांच वर्षीय बच्ची जिस गांधीनगर के इलाके से दो दिन बाद पाई गई, उस इलाके के थाने में भी जनवरी से अब तक पांच बच्चियों के लापता होने की रिपोर्ट दर्ज है, जिनका कोई अता-पता नहीं मिल पाया है।

दिल्ली पुलिस के 11 जिलों में सबसे ज्यादा बच्चे बाहरी दिल्ली (106 बच्चे)और दक्षिण-पूर्व दिल्ली (106 बच्चों) के लापता होने की रिपोर्ट दर्ज कराई गई। बाहरी दिल्ली से लापता बच्चों में से 69 (लगभग 65 प्रतिशत) लड़कियां हैं। इसी तरह दक्षिण-पूर्व दिल्ली में कुल लापता बच्चों में से 65 (61 फीसदी) लड़कियां हैं। गृह मंत्रालय को भेजे गए इन आंकड़ों में यह भी बताया गया है कि पूर्वी दिल्ली जिले में इस साल खोए 80 नाबालिगों में से 50 लड़कियां हैं। बच्चों के अधिकारों पर काम करने वाली स्वयंसेवी संस्था 'बचपन बचाओ आंदोलन' के संस्थापक कैलाश सत्यार्थी का कहना है कि पिछले तीन साल के सरकारी आंकड़े साफ बयान कर रहे हैं कि राजधानी में हर साल गायब होने वाले बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की रिपोर्ट में भी इसका जिक्र है। कैलाश सत्यार्थी का मानना है कि अगर दिल्ली पुलिस चौबीस घंटे के भीतर लापता होने की रिपोर्ट दर्ज कर ले तो ज्यादातर बच्चों को खोजना आसान होगा। एक अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्था 'क्राई' के एसोसिएट जनरल मैनेजर जया सिंह का कहना है कि ज्यादातर लापता बच्चों को वैश्यावृत्ति और बाल मजदूरी में झोंक दिया जाता है। इन मामलों में सीधे-सीधे पुलिस की ही जिम्मेदारी बनती है। 'क्राई' ने ऐसे कई मामलों के आधार पर राष्ट्रीय बाल अधिकार व संरक्षण आयोग से सिफारिश की है कि पुलिस महकमे में स्टैंडर्ड ऑपरेटिंग प्रोटोकॉल को अनिवार्य रूप से लागू करवाया जाए। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बावजूद इसे अभी तक किसी भी पुलिस थाने में नहीं लागू किया जा सका है।

कितने बच्चे हुए लापता?

जिला	कुल बच्चे लापता	बच्चियों की संख्या	प्रतिशत
मध्य	16	6	37.5
पूर्वी	80	50	62.5
नई दिल्ली	7	4	57
उत्तर	21	10	48
उत्तर-पूर्व	84	65	77
उत्तर-पश्चिम	71	41	58
बाहरी	106	69	65
दक्षिण	46	27	59
दक्षिण पूर्व	106	65	61
दक्षिण-पश्चिम	50	32	64
पश्चिम	60	40	67

दैनिक भास्कर 24.4.2013

हर मामले में एफआईआर जरूरी : सुप्रीम कोर्ट

सुप्रीम कोर्ट के निर्देश

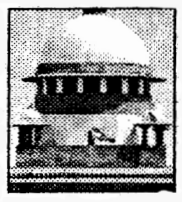

- उन बच्चों के मामले में भी एआईआर दर्ज की जाए, जो अब तक लापता हैं।
- गुमशुदा बच्चों के मामले में पुलिस ऐसी मानक संचालन प्रक्रियाएं अमल में लाएं, जिससे उन्हें ट्रेस करने में मदद मिले।
- हर थाने में विशेष बाल कल्याण अधिकारी की प्रशिक्षण के बाद नियुक्ति की जाए, जो लापता बच्चों के मामलों को देखे।
- पुलिस बरामद बच्चों का रिकॉर्ड उनके फोटोग्राफ के साथ रखे।

गुमशुदा बच्चों की तेजी से बढ़ रही संख्या को लेकर सुप्रीम कोर्ट भी फिक्रमंद है। इसी साल सुप्रीम कोर्ट ने एक बेहद जरूरी व्यवस्था दी कि लापता बच्चों हर मामले में एफआईआर दर्ज कराई जाए।

मुख्य न्यायाधीश अल्तमश कबीर की अगुआई वाली खंडपीठ ने स्वयंसेवी संगठन बचपन बचाओ आंदोनल की एक याचिका की सुनवाई करते हुए गुमशुदा बच्चों को लेकर राज्य सरकारों के राज्य सरकारों के ढुलमुल रवैये पर नाराजगी जताई थी और राज्यों से कहा था कि गुमशुदगी सूचना मिलते ही बच्चे की तलाश की तलाश के साथ ही एफआईआर दर्ज किया जाना सुनिश्चित करें।

रास्ट्रीय सहारा 1.6.2013

कत्ल, कानून और करुणा

विद्या जैन

वैश्वीकरण के प्रसार के साथ पितृसत्ता की पुरानी संरचनाएं टूटनी चाहिए थीं, जैसा कि विकसित देशों में हुआ है। लेकिन दुर्भाग्यवश तीसरी दुनिया के तमाम देशों में वैश्वीकरण पुराने सामाजिक ढांचों की जकड़न को कमजोर करने में विफल रहा। भारत में भी पितृसत्ता की बंदिशें टूटे बगैर ही वैश्वीकरण की संरचनाएं कायम हो गईं जहां पितृसत्ता की प्राचीन बंदिशों- परिवार, पुरुष और परदे- के जाल से बाहर आने के लिए स्त्री को अस्मिता का संघर्ष करना पड़ रहा था। वैश्वीकरण ने स्त्री के लिए मुक्तिदाता की भूमिका निभाने की जगह उसे और अधिक नई तरह की बेड़ियों में जकड़ा है।

इस तरह स्त्री को दोहरे शोषण से जूझना पड़ रहा है। पारंपरिक समय में परदे में जकड़ी स्त्री पुरुष के अधीन थी तो वर्तमान में बाजार ने उसे पूरी तरह अपने प्रभाव में ले लिया है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के नाम पर केवल दिखावा हो रहा है। वास्तव में तो नई-नई संरचनाओं के बनने से स्त्री अधिक गुलामी की तरफ जा रही है। बाजार उसे उपभोग की वस्तु मान कर एक बनावटी स्त्री की छवि गढ़ रहा है, जो पितृसत्ता के अधीन रहते हुए बाजार के लिए मुनाफे की राहें खोलती है। इसके उदाहरण दोपहर बाद आने वाले उन तमाम टीवी सीरियलों और विज्ञापनों में देखे जा सकते हैं, जो स्त्री को लक्ष्य करके निर्मित और प्रसारित होते हैं। एक तरफ सीरियलों में लगातार परंपरागत संरचनाओं की मजबूती सामने आ रही है, वहीं दूसरी तरफ बाजार द्वारा निर्मित सुंदरता के नए प्रतिमानों में स्त्री का बनावटी रूप दिखाया जाता है।

यही कारण है कि गांवों में स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र दिखें या नहीं, पर ब्यूटी पार्लर खुले मिल जाएंगे। सौंदर्य उद्योग का खयाल है कि अगर गृहणियों में अपने शरीर, त्वचा और सौंदर्य के प्रति ललक पैदा की जाए तो उसे बड़े पैमाने पर उपभोक्ता मिलेंगे। परंपरागत समाजों में सौंदर्य के प्रतिमान पुरुष द्वारा तय किए जा रहे हैं, तो वर्तमान संदर्भ में इन प्रतिमानों को बाजार तय कर रहा है। लेकिन ये दोनों पितृसत्तात्मक व्यवस्था के इर्दगिर्द ही अपनी अवधारणाएं रच रहे हैं। मगर स्त्री मुक्ति का सपना न पारंपरिक संरचनाओं से होकर गुजर सकता है और न ही बाजारीय अवधारणाओं से। इस तरह पितृसत्तात्मकता और वैश्वीकरण के संक्रमण के दौर में एक संघर्षशील और मुक्तिकामी स्त्री के लिए चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। उसे समाज और बाजार दोनों से मुक्ति के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

परंपरागत समाज में स्त्री पर घरेलू कार्यों का बोझ था, जिसमें पुरुष की कोई भागीदारी नहीं होती थी। लेकिन बाजार ने उस पर करिअर और सुंदरता के दो अन्य भार भी डाल दिए हैं। बाजार ने स्त्री के लिए ऐसे करिअर निर्धारित किए हैं जिनमें उसकी देह के बाजार निर्मित सुंदरता के पैमाने से उसे देखा जाता हैं। घर की चौखट के भीतर कोई विशेष परिवर्तन न होने से वहां गृहणी के परंपरागत काम स्त्री को करने ही पड़ते हैं, वहीं बाहर करिअर के लिए स्वयं को बाजार के हवाले करना एक मजबूरी बन गया है। इस तिहरी बंदिश से मुक्ति के कई रास्ते सुझाए जा रहे हैं।

वैश्वीकरण इसके लिए पाश्चात्य नारीवादी संकल्पना को उचित रास्ता मानता है। जबकि भारतीय सामाजिक परिस्थितियां पाश्चात्य देशों से अलग हैं, इसलिए यहां पर लैंगिक विषमता की वजहें उन देशों से भिन्न हैं। वैसे भी पाश्चात्य नारीवाद ने स्त्री को मुक्ति कम दी है और बाजार की गुलाम अधिक बनाया है। इसलिए भारतीय स्त्री की मुक्ति का रास्ता यहां के समाज से ही निकालना होगा। स्त्री मुक्ति के लिए तीन रास्ते बताए जा रहे हैं जिनकी मूल संकल्पनाएं कत्ल, कानून और करुणा हैं।

कत्ल का संदर्भ स्त्री सुरक्षा के लिए दिए जा रहे उन तर्कों से है, जो कहते हैं कि औरत को सुरक्षा के लिए चाकू लेकर चलना चाहिए। या उसे जूडे-कराटे में पारंगत होना होगा या लाल मिर्च के पैकेट अपने परिधान में छिपा कर रखने होंगे। यह एक तरह से अधूरा या अपरिपक्व विचार है, जो सुरक्षा को समाज से जोड़ कर नहीं देखता। क्योंकि औरतों को खतरा समाज की विषमताकारी मान्यताओं से है। उन मान्यताओं को किसी हिंसात्मक विचार से नहीं बदला जा सकता, इससे तो मात्र द्वेष ही बढ़ सकता है। इस विकल्प से सुरक्षित समाज बनाने के बजाय एक असुरक्षित माहौल बन जाएगा, जहां हर कोई चाकू लेकर चल रहा है। कितनी विडंबनापूर्ण स्थिति है कि जिस देश को गांधी ने अहिंसा के बल पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति दिलाई, वहां हम एक दूसरे को समाज में सम्मानपूर्ण और निर्भीक जीवन जीने का विश्वास नहीं दे पा रहे हैं।

हथियार इंसान को डरपोक बना सकते हैं, निडर और साहसी नहीं। यही कारण है कि ऐसे तर्क देने वालों के पास समाज की कई बेहतर संकल्पना नहीं है, वे केवल तात्कालिक घटनाओं पर फौरन अपनी प्रतिक्रिया दे देते हैं। इन त्वरित प्रतिक्रियाओं से समाज में एक प्रभाव यह पड़ता है कि लोग वास्तविक विकल्प की तलाश से भटक कर अलग दिशा में सोचने लग जाते हैं। चूंकि किसी विशेष घटना के वक्त लोगों में आक्रोश होता है और वे भावनावश ऐसी प्रतिक्रियाओं के भी समर्थन में खड़े हो जाते हैं जिनमें भविष्य के समाज के बारे में कोई समझ नहीं होती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि स्त्री विमर्श के साथ-साथ समतामूलक समाज के दूसरे मुद्दों पर भी चर्चा हो। तभी इस विमर्श का कोई सार्थक नतीजा निकल पाएगा।

परंपरागत समाजों में सौंदर्य के प्रतिमान पुरुष द्वारा तय किए जा रहे हैं, तो वर्तमान संदर्भ में इन प्रतिमानों को बाजार तय कर रहा है। लेकिन ये दोनों पितृसत्तात्मक व्यवस्था के इर्दगिर्द ही अपनी अवधारणाएं रच रहे हैं। मगर स्त्री मुक्ति का सपना न पारंपरिक संरचनाओं से होकर गुजर सकता है और न ही बाजारीय अवधारणाओं से।

अब दूसरे विकल्प की चर्चा करें तो वह कानूनी प्रावधानों के रूप में उपस्थित है। कई बार यह आरोप लगाया जाता है कि स्त्रियों को समाज में बराबरी का दर्जा देने के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों का प्रभावी अनुपालन नहीं किया जाता। जबकि सच्चाई यह है कि किसी भी कानून का क्रियान्वयन बहुत हद तक समाज के मूल्यों पर निर्भर करता है। इसलिए कानून मात्र से समाज में लैंगिक भेदभाव, हिंसा और उत्पीड़न का अंत हो जाना संभव नहीं है। इसका कार्य अपराध के बाद दिया जाने वाला दंड और न्याय उपलब्ध करना है। अपराध का पूर्ण उन्मूलन तो तभी हो सकता है, जब लोगों की आपराधिक प्रवृत्ति का अंत हो और यह कार्य सामाजिक परिवर्तन से ही संभव है। लिहाजा, दूसरे विकल्प को प्रभावी बनाने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

तीसरा और सबसे अहम पक्ष है करुणा, जिसके माध्यम से समाज में प्रेम, सौहार्द और सहानुभूति का परिवेश तैयार किया जा सकता है। इसी में सुरक्षा, समानता और स्वतंत्रता के बीज निहित हैं, क्योंकि यह उस सामंतवादी व्यवस्था की पुरानी संरचनाओं को भी बदल सकती है, जो पितृसत्ता के आधार स्तंभ हैं। पति, परिवार और पितृसत्ता की बंदिशों से बाहर आने के लिए औरत को करुणा के अहिंसक हथियार का प्रयोग करना चाहिए। यही पाश्चात्य स्त्रीवाद से अलग धारणा भारत में सामाजिक परिवर्तन को संभव बना सकती है।

यह समझना आवश्यक है कि करुणा कायरों की जीवन पद्धति का हिस्सा न होकर बहादुरों का हथियार है और इसकी सफलता के प्रमाण भारतीय मुक्ति संग्राम में देखे जा सकते हैं। इसके माध्यम से स्त्री को वैश्वीकरण के दौरान उपजी बंदिशों से भी मुक्ति मिल सकती है, क्योंकि बाजार जहां सुंदरता के व्यक्तिगत और दिखावटी पैमाने रच रहा है, वहां उसे सुंदरता की सामूहिक पहचान और समरसता से मात दी जा सकती है।

वैश्वीकरण की अन्य संरचना मीडिया भी महिलाओं को लेकर जिस तरह के उत्पाद प्रस्तुत कर रहा है, उनके प्रसार का सबसे बड़ा कारण बढ़ती हुई 'एकांतता' है। क्योंकि लोग समाज के बीच रहते हुए भी स्वयं को निहायत असहाय और अकेला महसूस करने लगे हैं।

ऐसी स्थिति में उन्हें मानसिक रूप से संचार के साधनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, जबकि करुणा से प्रेम और सामूहिकता का प्रसार होगा तो लोगों का सामाजिकीकरण वैश्वीकरण की शर्तों पर न होकर स्थानीयता की जरूरतों पर होने लगेगा। इससे स्त्रियों की मीडिया पर निर्भरता कम होकर समाज में उनकी हिस्सेदारी बढ़ने की संभावनाएं अधिक होंगी और सामाजिक लोकतंत्र स्थापित हो सकेगा। वैश्वीकरण ने जिस तरह से राजनीतिक लोकतंत्र को केंद्रीकृत कर दिया है, उससे आर्थिक असमानताओं के विस्तार के साथ-साथ स्त्री की अस्मिता कहीं गुम हो गई है।

गांधी जब राजनीतिक लोकतंत्र के विकेंद्रीकरण पर बल दे रहे थे, तो उनका उद्देश्य संपूर्ण समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उन्नति था। इसी वजह से स्त्री विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए इन तीनों ही क्षेत्रों में सत्ता को विकेंद्रीकृत करना होगा।

सामाजिक सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए पितृसत्तात्मक मूल्यों का अंत करना अनिवार्य है, जबकि राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण के लिए चेतना का प्रसार आवश्यक माना जाता है। चेतना का प्रसार भी करुणामय तरीकों से संभव है, न कि बल प्रयोग से। इसे स्वतंत्र भारत के उन प्रयोगों से आसानी से समझा जा सकता है जिनमें रचनात्मक कार्यक्रमों के जरिए समाज में व्यापक चेतना का प्रसार हुआ।

सूचनाधिकार की पूरी मुहिम इसके लिए एक बेहतर उदाहरण है, क्योंकि इसमें करुणा प्रधान साधनों से लोगों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया गया। यह प्रयोग राजनीतिक विकेंद्रीकरण के क्षेत्र में सफल होकर लोगों को व्यापक पैमाने पर लोकतंत्र में भागीदार बनाने में सक्षम रहा। ऐसे ही प्रयोग स्त्री विमर्श को आगे बढ़ा सकते हैं, बाजारवाद और पितृसत्तात्मक मानसिकता, दोनों से छुटकारा दिला सकते हैं।

सामाजिक संरचनाओं को विखंडित करने से पहले नवीन संरचनाओं का ताना-बाना बुनना जरूरी हो जाता है, तभी पूरे समाज के जकड़े हुए सोच को एक समतामूलक चेतना की ओर अग्रसर किया जा सकता है। स्त्री को सामंतवाद और वैश्वीकरण की संरचनाओं से आगे जाने के लिए ऐसे सपने तलाशने होंगे जो उसके अपने हों और संपूर्ण समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए समानता के लक्ष्य की तरफ ले जाते हों। वरना हम अपने-अपने विचारों की कुंठाओं में कैद होकर किसी घटना विशेष के समय आक्रोश जाहिर करने की भूमिका मात्र से संतोष करते रहेंगे। ऐसे समाज का रास्ता कत्ल और कानून से होकर नहीं गुजरता, वह तो करुणा की विराट संकल्पना से ही हासिल किया जा सकता है।

जनसत्ता 17.4.2013

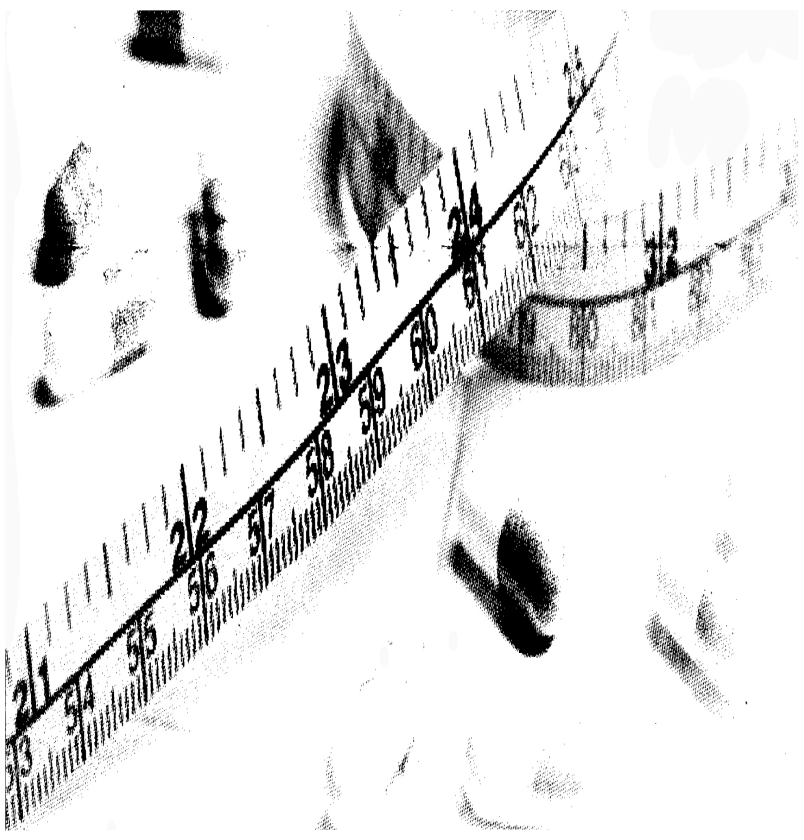

स्लिमिंग पिल्स के बढ़ते खतरे !

नई दिल्ली। आधुनिक समय में रोजमर्रे की व्यस्तताओं के कारण महिलाओं में छरहरा बनने के लिए व्यायाम एवं संतुलित आहार का सहारा लेने के बजाय स्लिमिंग पिल्स के सेवन की प्रवृति बढ़ रही है जिसके चलते वे बीमारियों से ग्रस्त हो रही हैं।

अनेक देशों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि पहले की तुलना में आज अधिक महिलाए वजन घटाने के लिए समुचित खान-पान एवं व्यायाम के बजाय स्लिमिंग पिल्स का सहारा लेती हैं, लेकिन चिकित्सकों का कहना है कि वजन घटाने के लिए स्लिमिंग पिल्स पर अधिक निर्भर रहने से रक्तचाप में कमी या वृद्धि, चेहरे पर सूजन, यौन अनिच्छा, बांझपन, मिर्गी, मानसिक बीमारियां, दृष्टि भ्रम, मिजाज में अचानक परिवर्तन, थकावट, धड़कन बढ़ना, अनिद्रा, कब्ज, डायरिया, जी मिचलाना, अवसाद, आलस्य एवं चिड़चिड़ापन जैसी स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं।

यही नहीं आज छरहरा बनने के लिए महिलाएं लाइपोसक्शन जैसी कॉस्मेटिक शल्य प्रक्रियाएं कराने के लिए भी कॉस्मेटिक सर्जनों के पास अधिक संख्या में पहुंचने लगी हैं। कॉस्मेटिक विशेषज्ञ एवं 'कॉस्मेटिक लेजर सर्जरी सेंटर ऑफ इंडिया' के निदेशक डॉ. पीके तलवार कहते हैं कि पिछले कुछ सालों से लाइपोसक्शन कराने का क्रेज लोगों में अधिक बढ़ा है। वह कहते हैं कि वजन घटाने के लिए सबसे पहले लोगों को व्यायामक करने तथा संतुलित आहार का सेवन जैसे उपायों को आजमाना चाहिए लेकिन आजकल व्यस्तताओं एवं विज्ञापनों के अभाव के कारण लोग चिकित्सकों की सलाह के बगैर स्लिमिंग पिल्स का अंधाधुंध सेवन करने लगते हैं जिनसे लाभ होने के बजाय नुकसान होता है।

> **▶ छरहरा बनने के लिए महिलाएं लाइपोसक्शन जैसी कॉस्मेटिक शल्य प्रक्रियाएं कराने के लिए भी कॉस्मेटिक सर्जनों के पास अधिक संख्या में पहुंचने लगी हैं**
>
> **▶ आज किशोरावस्था और युवा वर्ग ही नहीं बल्कि आठ से 10 साल उम्र की लड़कियां भी फिल्म और टेलीविजन के प्रभाव के कारण मोटापे को अपना दुश्मन मानने लगी हैं**

मनोचिकित्सक एवं यहां स्थित 'कॉस्मोस इंस्टीच्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड बिहेवियरल साइंसेस' के प्रमुख डॉ. सुनील मित्तल कहते हैं कि आज लोगों को खास तौर पर युवा पीढ़ी में छरहरा बनने और दिखने की होड इस कदर हावी है कि आठ से 10 साल उम्र की लड़कियां भी फिल्म और टेलीविजन के प्रभाव के कारण मोटापे को अपना दुश्मन मानने लगी हैं। वे भर पेट खाना नहीं खातीं क्योंकि उन्हें डर होता है कि अधिक खाने से वे मोटी हो जाएंगीं। इस कारण आज पांच से 12 साल उम्र की बच्चियां भी एनोरेक्सिया नरवोसा तथा डिस्मोफिया जैसी गंभीर मानसिक बीमारियों से पीड़ित होकर मनोचिकित्सकों से अपना इलाज करा रही हैं। चिकित्सकों के अनुसार छरहरा बनाने के दावे के साथ बेची जाने वाली दवाइयां मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस में स्थित भूख को नियंत्रित करने वाले केंद्र को प्रभावित करती है। इससे व्यक्ति की खाने की इच्छा कम हो जाती है और कम खाने के कारण व्यक्ति का वजन कम होने लगता है।

डॉ. तलवार के अनुसार वजन घटाने तथा उसे नियंत्रित रखने का सबसे अच्छा तरीका संतुलित आहार लेना है जो कि प्रोटीन से भरपूर हो और जिसमें कॉर्बोहाइड्रेट तथा वसा एवं चिकनाई की मात्रा कम हो उसके सेवन के साथ-साथ नियमित व्यायाम करना ही है। 'कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर' और ऑस्ट्रेलिया के अग्रणी उपभोक्ता संगठन 'च्वाइस' की ओर से किए गए अध्ययन से निष्कर्ष निकला है कि स्लिमिंग गोलियों में व्यापक रूप से प्रयुक्त विभिन्न घटकों के गंभीर दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं। **(एजेंसी)**

रास्ट्रीय सहारा 1.4.2013

राज्यों की भी हैं खाद्य सुरक्षा योजनाएं

केंद्र सरकार देश की तकरीबन 80 करोड़ आबादी को खाद्य सुरक्षा का अधिकार देकर सस्ता अनाज मुहैया कराने के लिए खाद्य सुरक्षा कानून बनाने जा रही है, जिसके तहत दो रुपए प्रति किग्रा गेहूं, 3 रुपए प्रति किग्रा चावल और एक रुपया प्रति किग्रा मोटा अनाज (कुल 35 किग्रा) देने की व्यवस्था की जानी है। सरकार का मानना है कि इसके बाद सरकार पर भले ही सब्सिडी का भारी बोझ पड़ेगा लेकिन भूख से होने वाली मौतों पर विराम लगेगा। ऐसा नहीं है कि देश में इस तरह की व्यवस्था पहली बार की जा रही है। कई राज्यों में गरीबों को पहले से ही अपने-अपने स्तर पर और केंद्र की मदद से इससे मिलती-जुलती व्यवस्था की हुई हैं। हालांकि सब राज्यों में यह शत प्रतिशत सफलता से नहीं चल पा रही हैं, क्योंकि पीडीएस व्यवस्था चरमराई हुई है। कई राज्य प्रस्तावित नए खाद्य सुरक्षा कानून को अपने राज्य में लागू कर पाने में अपने को असहाय बता रहे हैं।

बिहार : पीडीएस पर निर्भर

में केंद्र द्वारा मानी गई गरीब आबादी से कहीं ज्यादा आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली है। इस आबादी को केंद्रीय पीडीएस और और अतिरिक्त धन राशि व्यय करके खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है। बिहार खाद्य सुरक्षा कानून के तहत पड़ने वाले अतिरिक्त बोझ को उठाने की स्थिति में नहीं है। केंद्र राज्य में 65.23 लाख बीपीएल परिवार मानता है, जबकि राज्य सरकार 1.37 करोड़ इनकी संख्या बताती है। राज्य में पीडीएस के माध्यम से 1.12 करोड़ परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है। 580 करोड़ के सालाना कोष में 120 करोड़ बीपीएल परिवारों पर खर्च होता है। इस तरह 25 लाख बीपीएल परिवारों को ही राज्य सरकार लाभान्वित कर पा रही है। अतिरिक्त खाद्यान्न खरीद कर पूर्ति करनी पड़ती है।

गुजरात : एपीएल का कोटा बीपीएल को

के समक्ष भी यही समस्या है। उसे भी केंद्र द्वारा चिह्नित बीपीएल परिवारों से कहीं ज्यादा परिवारों को खाद्यान्न मुहैया कराना पड़ रहा है। केंद्र ने 13.1 लाख बीपीएल परिवारों की पहचान की है जबकि राज्य सरकार इनकी संख्या 24.3 लाख बताती है। इसलिए उसे एपीएल के कोटे में से बीपीएल परिवारों की आपूर्ति करनी पड़ती है।

पश्चिम बंगाल : 2 रु. किलो चावल

में पीडीएस के माध्यम से सब्सिडीयुक्त खाद्यान्न लोगों को उपलब्ध कराने में 625 करोड़ रुपए वार्षिक खर्च किये जा रहे हैं। सरकार ने सन् 2000 में गरीबों को 2रुपए प्रति किग्रा चावल देने की योजना शुरू की थी। पहले से लाभान्वित होने वालों की सूची को बढ़ाते हुए ममता बनर्जी ने इस योजना में 40 लाख लोगों को और जोड़ दिया। इसके अलावा टोटो आदिवासी परिवारों के 1391 सदस्यों को हर सप्ताह 2 किग्रा चावल और 7.50 किग्रा गेहूं प्रति सदस्य के हिसाब से मुफ्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। राज्य के खाद्य आपूर्ति मंत्री मुल्लिक का कहना है कि खाद्य सुरक्षा कानून आने पर राज्य के ऊपर 5400 करोड़ रुपए का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा जिसको वहन करने की स्थिति में राज्य नहीं है।

पंजाब : आटा दाल योजना

में 30000 रुपए वार्षिक से कम आमदनी वाले परिवारों के लिए 2007 में आटा-दाल योजना शुरू की गई। जिसके तहत 35 किग्रा गेहूं 4 रुपए प्रति किग्रा और 20 रुपए प्रति किग्रा के हिसाब से चार किग्रा दाल देने की व्यवस्था थी। जिसे घटाकर अब क्रमशः 25 किग्रा और 2.5 किग्रा कर दिया गया है। मौजूदा समय में15.4 लाख लोग इसके पात्र बताए जा रहे हैं। पंजाब में नोडल एजेंसी के सही तरीके से काम नहीं कर पाने की वजह से गरीबों के लिए सस्ता अनाज उलब्ध कराने की योजना सफल नहीं हो पा रही है। राज्य की भी शिकायत यही है कि केंद्र द्वारा चिह्नित बीपीएल परिवारों से कहीं बड़ी है इनकी सूची।

छत्तीसगढ़ : 1रु. किलो चावल

में पिछले साल दिसम्बर में खाद्य सुरक्षा कानून पास किया गया जिसके तहत एक रुपया प्रति किग्रा के हिसाब से चावल देने की व्यवस्था की गई। इसके तहत आपदा पीड़ित के लिए मुफ्त चावल उपलब्ध कराए जाने की भी व्यवस्था है। इसके अलावा लोगों को प्रोटीनयुक्त भोजन उपलब्ध कराए जाने के मद्देनजर पांच रुपए प्रति किग्रा चना और 10 रुपए प्रति किग्रा दालें उपलब्ध कराना शामिल है। राज्य सरकार ने इस योजना को लागू करने के लिए 2000 करोड़ रुपए का बजट आवटित किया है।

राजस्थान : 1रु. किलो गेंहूं

में अन्त्योदय योजना के तहत आने वाले गरीब परिवारों को 1 रुपय प्रति किग्रा गेहूं उपलब्ध कराया जाता है, जिस पर 500 करोड़ रुपए वार्षिक खर्च किये जा रहे हैं। इसके अलावा एपीएल परिवारों को 10 रुपए प्रति किग्रा चीनी और पांच रुपए प्रति किग्रा आटा दिया जाता है, जिस पर 350 करोड़ रुपए वार्षिक खर्च किये जा रहे हैं।

असम : 20 किलो चावल

में लोगों को खाद्य सुरक्षा दिये जाने के मद्देनजर 2010 में 5.65रुपए प्रति किग्रा के हिसाब से 20 किग्रा चावल देने की योजना शुरू की गई। जिससे 20 लाख एपीएल परिवार लाभान्वित होते हैं, 28 लाख बीपीएल परिवारों के लिए पहले से ही यह स्कीम लागू थी।

हिमाचल प्रदेश: पीडीएस से अनाज, तेल, दाल

में 175 करोड़ रुपए की लागत से सभी 16.32 लाख राशनकार्ड होल्डरों को रियायती दरों पर सरसों का तेल, दालें और आईडोजाइज्ड नमक उपलब्ध कराया जा रहा है। जिसके तहत क्रमशः मूंग की दाल 49.99रुपए प्रति किग्रा, मसूर 29.99 रुपए प्रति किग्रा और उड़द की दाल 34.99 रुपए प्रति किग्रा, सरसों का दो किग्रा तेल 49.99 प्रति किग्रा और नमक 4 रुपए प्रति किग्रा के हिसाब से उपलब्ध कराया जाता है।

ओड़िशा: 1रु. किलो चावल

में गत फरवरी माह में 48 लाख बीपीएल परिवारों के लिए एक रुपया प्रति किग्रा के हिसाब से 25 किग्रा चावल प्रति परिवार प्रति माह देने की योजना शुरू की गई है। नवीन पटनायक द्वारा शुरू की गई लोकलुभावन योजनाओं में से यह एक बड़ी योजना है।' पटनायक ने लोगों को लुभाने के लिए तकरीबन दो दर्जन योजनाएं शुरू की हैं, जिनमें मुफ्त साइकिल, लेपटॉप, मेडीसिन, मोबाइल फोन तथा महिलाओं के सेल्फ हेल्प ग्रुप के लिए नकदी सहायता योजना भी शामिल है।

मध्य प्रदेश: अन्नपूर्णा भरेगी पेट

में इसी माह मुख्यमंत्री अन्नपूर्णा योजना शुरू की गई है। इसे केंद्र के खाद्य सुरक्षा विधेयक से एक कदम आगे बताया जा रहा है। इसके तहत पीडीएस के माध्यम से बीपीएल अन्त्योदय परिवारों को एक रुपया प्रति किग्रा गेहूं और दो रुपए प्रति किग्रा चावल के हिसाब से प्रति परिवार क्रमशः 35 किग्रा और 20 किग्रा महीने में एक बार दिये जाने की व्यवस्था की गई है। इसके तहत राज्य की आधी आबादी को शामिल किये जाने का टार्गेट है, जिस पर 440 करोड़ रुपए प्रति वर्ष खर्च होंगे।

तमिलनाडु: 20 किलो मुफ्त चावल

में सभी 1.85 करोड़ राशनकार्ड होल्डरों को हर माह 20 किग्रा चावल मुफ्त मुहैया कराया जाता है। राज्य सरकार दावा करती है कि वह अपनी खाद्य सुरक्षा योजना को और बेहतर कर रही है और इस पर 2011 में जो बजट 4000 करोड़ खर्च हुआ था वह बढ़कर अब 4900 करोड़ हो गया है। इसके अलावा राज्य में समय-समय पर खाद्य सुरक्षा के मद्देनजर लोकलुभावन योजनाएं राज्य में आने वाली सरकारें शुरू करती रही हैं।

कर्नाटक: 30 रु. में 30 किलो चावल

में गत जुलाई माह से प्रति बीपीएल परिवार प्रति माह एक रुपया प्रति किग्रा के हिसाब से 30 किग्रा चावल उपलब्ध कराया जा रहा है। सरकार की सोच है इससे 98.17 लाख गरीब लोग लाभान्वित होंगे। इस योजना पर 460 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष खर्च होंगे। राज्य सरकार ने केंद्र से 2.40 लाख टन चावल उपलब्ध कराने का अनुरोध किया है।

आंध्र प्रदेश: सस्ते चावल के सहारे

में बीपीएल अन्त्योदय परिवारों के लिए अच्छी क्वालिटी चावल एक रुपया प्रति किग्रा योजना शुरू की है। जिसे पीडीएस के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है। इससे 2.70 करोड़ गरीब परिवार लाभ उठा रहे हैं। इसके तहत 35 किग्रा चावल प्रति माह दिया जाता है। जबकि अन्य बीपीएल परिवारों को प्रति व्यक्ति चार किग्रा या अधिकतम 20 किग्रा प्रतिमाह दिया जाता है।

केरल: पीडीएस का ही सहारा

में पीडीएस के माध्यम से 79 लाख परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा रहा है, इनमें 14 लाख बीपीएल परिवार हैं। राज्य को इनकी आपूर्ति के लिए 1.35 लाख टन अनाज की आवश्यकता होती है। बीपीएल परिवारों को एक रुपया प्रति किग्रा के हिसाब से 25 किग्रा चावल और 2 रुपए प्रति किग्रा के हिसाब से आठ किग्रा गेहूं दिया जाता है। जबकि अन्त्योदय परिवारों को 35 किग्रा चावल दिया जाता है। जबकि 65 साल से ज्या उम्र के व्यक्ति को 10 किग्रा चावल मुफ्त दिया जाता है।

रास्ट्रीय सहारा 14.6.2013

भूख का इलाज है बेहतर निगरानी तंत्र

नीति

अनुराग दीक्षित
edit@amarujala.com

संप्रग सरकार की बहुप्रतीक्षित खाद्य सुरक्षा विधेयक कानून बनते ही देश की तस्वीर बदल देगा! कुपोषण बीते जमाने की बात होगी! भूख के चलते फिर कोई मौत नहीं होगी! पिछले चार वर्षों से लगभग ऐसा ही सपना दिखाया जाता रहा है, जो अभी तक सच नहीं हो सका है। अब विशेष सत्र में इसे पेश करने की बात कही जा रही है। हालांकि विधेयक को कानून बनाने की दिशा में प्रयास होते जरूर दिखते हैं और करीब हर दल इस मुद्दे पर गंभीर होने जैसा राजनीतिक संदेश देने में लगा रहा है। लेकिन क्या वाकई यही सत्य है?

समझना होगा कि आजादी के करीब 66 वर्ष बाद भी अगर देश की करीब 66 फीसदी आबादी को कम दाम पर खाद्यान्न की आवश्यकता है, तो इस हालात के पीछे दोषी कौन है? देश की एक तिहाई आबादी को आज तक आत्मनिर्भर न बना पाने का जिम्मेदार आखिर किसे ठहराया जाए? क्यों आज भी रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन के दावे के बीच करोड़ों भारतीयों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पा रहा है? औसतन हर आधे घंटे में एक किसान की खुदकुशी के बीच भूख से होने वाली मौत का आंकड़ा सरकार के पास क्यों नहीं है? समझा जा सकता है कि जब अन्न पैदा करने वालों के ये हालात हैं, तो आम इंसान का क्या होगा? ऐसे में हमारा राजनीतिक वर्ग क्या सच में भुखमरी खत्म करने को प्राथमिकता में रखता है? खासकर तब, जबकि मौजूदा लोकसभा में 300 से ज्यादा सांसद और राज्य विधायिकाओं में भी सैकड़ों 'माननीय' करोड़पति हों।

वैसे कुछ अहम प्रावधानों के साथ देश के बड़े हिस्से को सस्ते दाम पर अनाज का कानूनी हक देना यकीनन एक बड़ी उपलब्धि होगी। हालांकि ऐसी योजनाएं पहले से वजूद में हैं। मसलन, कुपोषण दूर करने के लिए 70 के दशक में शुरू की गई समेकित बाल विकास सेवाओं (आईसीडीएस) के 40 वर्षों के बाद भी दुनिया का हर तीन में एक कुपोषित बच्चा भारत में है। इस युवा भारत में हर 20 सेकंड में एक मासूम की मौत हो रही है। इसके अलावा राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम), मध्याह्न खाद्यान्न योजना, सबला जैसी ढेरों योजनाएं करोड़ों रुपये के आवंटन के साथ कागजों पर मौजुद हैं, लेकिन अफसोस है कि उम्मीद के मुताबिक नतीजे आज तक नहीं मिल सके हैं। उधर गरीबी, कुपोषण और भूख से

संघीय ढांचे को नए सिरे से समझने की जरूरत है, ताकि आवंटन सही हाथों तक पहुंच सके।

निपटने के लिए बनी ढेरों योजनाओं का राजनीतिक फायदा तो उठाया जाता रहा है; लेकिन योजनाएं कैसे बेहतर तरह से काम करें, इस पर शायद ही कभी ईमानदारी से सोचा गया है! अधिकांश योजनाएं निगरानी तंत्र की विफलता या साठगांठ के चलते भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ती रही हैं। ऐसे में क्या इस नए कानून के बाद सब कुछ सुधर जाने की गारंटी होगी? जाहिर है, पहले मौजूदा निगरानी तंत्र को सुधारने के लिए संघीय ढांचे को नए सिरे से समझने की सख्त जरूरत है, ताकि लाखों करोड़ों का आवंटन सही हाथों में जा सके।

हालांकि सवाल सरकारों की चिंता का भी है। मसलन 'सड़ने से बेहतर गरीबों में अनाज बांटने' के सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश को केंद्र सरकार ने आज तक ध्यान क्यों नहीं दिया? उधर, गुजरात में बीते दस वर्षों से खाद्य सुरक्षा होने के नरेंद्र मोदी के दावे के बावजूद क्यों वहां राष्ट्रीय औसत से ज्यादा कुपोषण है? उत्तर प्रदेश सरकार खाद्य सुरक्षा के दायरे में गांवों का शत-प्रतिशत कवरेज चाहती है, लेकिन क्या दक्षिण की भांति स्वयं राज्य यह नहीं कर सकता? यकीनन यहां दूसरे के पाले में गेंद डालने का ही काम ज्यादा होता रहा है, जो अब भी कायम है। प्रस्तावित विधेयक में भी सबके घर तक अनाज पंहुचाने से लेकर खाद्य सुरक्षा भत्ता देने तक की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है। ऐसे में संघीय ढांचे के तर्क के बीच बुनियादी राजनीतिक सवाल यही है कि जब सब कुछ राज्यों को ही करना है, तो राजनीतिक श्रेय भला केंद्र सरकार क्यों ले? इन सबके बीच क्या हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुधार पाए हैं? गरीबों की वास्तविक संख्या जुटा पाए हैं? क्या आधार नंबर सारी मुसीबतों का हल है? अगर नहीं, तो इस गेम चेंजर' कानून को लाने में हुई इतनी देरी के बाद अचानक इतनी हड़बड़ी क्यों? ऐसे में राजनीतिक श्रेय लेने के बजाय नीतियों का बेहतर क्रियान्वयन सर्वोपरि होना चाहिए, जो फिलहाल अधिकांश मामलों में प्राथमिकता में नहीं दिखता।

अमर उजाला 20.6.2013

भूमि अधिग्रहण और स्त्रियां

मुस्कान

भूमि अधिग्रहण (पुनर्वास और पुनर्स्थापन) विधेयक अब कानून बनने की दिशा में निर्णायक मोड़ पर आ चुका है। एक सौ सत्तासी संशोधनों के सुझावों के बाद अब अगर संसद में विधेयक पर मुहर लग जाती है तो एक तरफ जहां सरकार अपनी पीठ थपथपाएगी वहीं ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में जिनकी जमीनें अधिग्रहीत की जानी हैं, वे भी मुआवजा बढ़ने से शायद राहत महसूस करें। लेकिन देश की राजनीति और समाज में पितृसत्तामक सोच और लैंगिक पूर्वग्रह इस कदर हावी हैं कि विस्थापितों की आधी आबादी यानी महिलाओं का मुद्दा पूरी चर्चा से बिल्कुल गायब है। ऐसा लगता है, पूरी तरह से उन्हें पुरुष की आश्रिता या परिवार का एक गौण हिस्सा मान लिया गया है।

देश की राजनीति और नीति निर्माण प्रक्रिया में पुरुषवादी सोच का वर्चस्व जिस तरह कायम है यह उसकी एक बानगी भर है। आश्चर्य का विषय यह है कि कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी, भांजपा की दिग्गज नेता सुषमा स्वराज, तृणमूल कांग्रेस की अध्यक्ष ममता बनर्जी और अन्य महिला राजनीतिज्ञों के होते हुए भी किसी के द्वारा प्रस्तावित विधेयक को महिलाओं के नजरिये से परखने की कोशिश नहीं की गई।

विस्थापन स्त्रियों को किस प्रकार प्रभावित करता है; उसके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम क्या हैं; पुनर्वास के संबंध में उनकी क्या खास जरूरतें हैं; क्या नए कानून में उनके लिए भी कुछ खास प्रावधान किए जाने की जरूरत है; ये सवाल किसी की जुबान पर नहीं हैं। यह कैसा लोकतंत्र है जो स्त्रियों के प्रश्न पर मौन है? जो उन्हें पुरुष की छाया से अलग निजी सत्ता के रूप में मान्यता ही नहीं देता!

प्रस्तावित विधेयक की इस बात के लिए तारीफ जरूर की जा सकती है कि इसमें 'प्रभावित कुटुंब' की परिभाषा का विस्तार किया गया है और पहली बार मुआवजे के लिए विस्थापित महिलाओं को भी विचारणीय हकदार माना गया है। संपत्ति के लिए अधिसूचित स्त्रियां और पैतृक संपत्ति के लिए नामित स्त्रियां (मूलतः बेटियां) हकदार होंगी। यह प्रावधान संपत्ति अधिकार कानून में मिले बेटियों के हक से मेल खाता है। पर वहां व्यवहार में देखे जाने वाले अंतर्विरोध यहां भी अमल में अवरोध बन कर मौजूद रहेंगे।

इस प्रसंग में 1967 के टीएन सिंह फॉर्मूले को याद किया जा सकता है। इस फॉर्मूले में प्रत्येक विस्थापित परिवार के एक व्यक्ति को नौकरी देने की व्यवस्था की गई थी। लेकिन महिलाओं को विस्थापन के बाद रोजगार दिलाने में यह विफल सिद्ध हुआ था। आमतौर पर नौकरी परिवार के वयस्क बेटों को ही दी गई। जहां वयस्क बेटे नहीं थे, परिवार में व्याप्त रूढ़िगत सोच के परिणामस्वरूप पुनर्वास पैकेज के तहत मिलने वाली नौकरी दहेज के रूप में घर-जवाइयों को दे दी गई। यहां हम देखते हैं कि सरकार द्वारा दिया जाने वाला नौकरी का अवसर हालांकि स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान रूप से उपलब्ध था, पर निगरानी तंत्र के अभाव और रूढ़िगत संस्कारों के कारण स्त्री के लिए यह अवसर बेमतलब साबित हुआ।

इसलिए यह देखना जरूरी हो जाता है कि किन प्रावधानों के समावेश से नए भूमि अधिग्रहण कानून को लैंगिक आधारों पर भी न्यायपूर्ण बनाया जा सकता है। सरदार सरोवर बांध परियोजना के संदर्भ में किए गए शोधों से पता चलता है कि विस्थापन स्त्रियों के लिए पुरुषों की तुलना में ज्यादा तकलीफदेह साबित हुआ है। अपने मूल स्थान से उजड़ने के बाद महिलाएं आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक, सभी स्तरों पर असहायता की स्थिति में आ गईं। अब तक के अनुभवों को देखते हुए सरकार को यह सीख लेनी चाहिए कि कैसे महिलाओं को विस्थापन के नकारात्मक प्रभावों से बाहर निकाला जाए।

विस्थापन स्त्रियों को किस प्रकार प्रभावित करता है; उसके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम क्या हैं; पुनर्वास के संबंध में उनकी क्या खास जरूरतें हैं; क्या नए कानून में उनके लिए भी कुछ खास प्रावधान किए जाने की जरूरत है; ये सवाल किसी की जुबान पर नहीं हैं। यह कैसा लोकतंत्र है जो स्त्रियों के प्रश्न पर मौन है?

भूमि अधिग्रहण विधेयक का लैंगिक दृष्टि से अध्ययन करने पर कुछ गंभीर समस्याएं दिखाई देती हैं, जिन पर ध्यान देना आवश्यक है।

एक है, भूमि के औपचारिक मालिकाना हक की समस्या। विस्थापन के बाद महिलाओं को मुआवजा मिलने में सबसे बड़ी बाधा भूमि के स्वामित्व को लेकर होती है। हमारे पितृसत्तात्मक समाज में, जहां भूमि संबंधी अधिकार प्रारंभ से ही पुरुष के पास रहे हैं, कितनी महिलाओं के पास जमीन की औपचारिक मालकियत होगी? इस स्थिति में एकल, तलाकशुदा और विधवा की स्थिति विशेष रूप से दयनीय हो जाती है। इनकी जमीन इनके पति, पिता या बेटे के नाम पर होने के कारण या तो इन्हें मुआवजा नहीं मिल पाता या फिर वे पूरी तरह से अधिकारियों की दया पर निर्भर हो जाती हैं। ऐसे में जरूरी है कि विधेयक में कुछ ऐसे प्रावधान किए जाएं जिससे महिलाओं को मालिकाना हक की औपचारिकता संबंधी बाधाओं का सामना न करना पड़े।

दूसरी समस्या। विस्थापन से पहले स्थानीय प्राकृतिक संसाधन स्त्रियों की आजीविका के प्रमुख आधार होते हैं। जंगल, नदी, समुद्र आदि से प्राप्त उत्पाद जैसे लकड़ियां, गोंद, सीपियां, जड़ी-बूटियां, फल आदि बेच कर औरतें गुजारा करती हैं। विस्थापन उनके इस आर्थिक आधार को ध्वस्त कर देता है। यह आवश्यक है कि इस आर्थिक क्षति की भरपाई के प्रावधान किए जाएं।

तीसरी समस्या पुनर्वास संबंधी नीति निर्माण में महिलाओं की भागीदारी न होना है। गौरतलब है कि विधेयक में 'सामाजिक समाघात निर्धारणह्व के संदर्भ में एक समिति गठित करने का प्रावधान है। इस समिति में दो गैर-सरकारी समाजविज्ञानी, पुनर्स्थापन संबंधी दो विशेषज्ञ और परियोजना संबंधी तकनीकी विशेषज्ञ को रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त इस विधेयक की धारा-आठ भी भूमि अधिग्रहण संबंधी प्रस्तावों और उनके संभावित सामाजिक परिणाम का जायजा लेने के लिए समिति के गठन की बात कहती है। इस समिति में वित्त, राजस्व, ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय, जनजाति कल्याण, पंचायती राज मंत्रालयों के सचिव सहित कुल नौ सदस्य होंगे।

लेकिन यहां गौरतलब है कि इन दोनों समितियों में महिला सदस्यों के लिए किसी प्रकार के आरक्षण की जरूरत महसूस नहीं की गई है। यहां तक कि दूसरी समिति में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सचिव को शामिल करना भी जरूरी नहीं समझा गया है। ये सभी संकेत इसी बात के हैं कि आज भी महिलाओं को नीति निर्माण प्रक्रिया में शामिल होने योग्य नहीं समझा जाता। जबकि किसी भी कानून को लैंगिक भेदभाव से मुक्त रखने और लैंगिक आधार पर न्यायपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है कि कानून के नियोजन, प्रबंधन और क्रियान्वयन, तीनों ही स्तरों पर महिलाओं की सुनिश्चित भागीदारी हो।

चौथी समस्या मुआवजे के नकद धनराशि के रूप में दिए जाने से जुड़ी है। प्रस्तावित विधेयक को सकारात्मक रूप में देखे जाने का सबसे पुख्ता आधार यही है कि इसमें परियोजना से प्रभावित परिवारों को जमीन के बदले, पहले के मुकाबले काफी बढ़ा हुआ मुआवजा दिया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार भाव की चार गुनी और शहरी क्षेत्रों में बाजार भाव की दो गुनी धनराशि मुआवजे के रूप में देने की बात कही गई है। साथ ही परिवहन संबंधी खर्च के तौर पर पचास हजार रुपए की अतिरिक्त धनराशि। निश्चय ही यह एक सराहनीय प्रावधान है। पर इसका दूसरा पहलू भी है। अतीत के अनुभव बताते हैं कि नकद मुआवजा महिलाओं के लिए परेशानी और असुरक्षा का सबब भी बना है।

वास्तव में ग्रामीण और आदिवासी समुदायों के लोग इतनी बड़ी धनराशि संभालने के आदी नहीं होते। मुआवजे की राशि को वे जल्द ही अपनी तात्कालिक जरूरतों और अनुत्पादक कार्यों पर खर्च कर देते हैं। पैसा उनके हाथ से ऐसे निकल जाता है जैसे छलनी में से पानी। नतीजतन वे कुछ समय बाद फिर से गरीबी की अवस्था में आ जाते हैं। और चूंकि यह मुआवजा अधिकतर पुरुषों के ही हाथ में रहता है, महिलाएं चाह कर भी कुछ नहीं कर सकतीं। लिहाजा नए कानून में कुछ ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे मुआवजे की राशि परिवार में पति-पत्नी दोनों के नियंत्रण में आ सके। इससे जहां पुरुषों द्वारा धन के अनाप-शनाप खर्च पर रोक लगेगी, वहीं उनका भविष्य भी सुरक्षित हो सकेगा। इस संदर्भ में एनटीपीसी की पुनर्वास नीति के उस प्रावधान का जिक्र करना अत्यंत प्रासंगिक है जो मुआवजे की राशि को पति-पत्नी दोनों के संयुक्त बैंक खाते में जमा करने की व्यवस्था करता है।

पांचवीं समस्या विस्थापन के बाद स्त्रियों के रोजगार से संबंधित है। विस्थापन से पहले बड़ी संख्या में ग्रामीण और आदिवासी महिलाएं प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त उत्पाद- जैसे फल, लकड़ी, जड़ी-बूटियां, गोंद, सीपियां आदि- बेच कर और रस्सी, टोकरियां आदि बना कर अपनी आजीविका कमाती हैं। लेकिन विस्थापन के बाद नई जगह में उन्हें रोजगार के गंभीर संकट का सामना करना पड़ता है। पुनर्वास पैकेज में दी जाने वाली नौकरी पर पुरुषों का ही आधिपत्य होता है। स्त्रियों को काम देने में परियोजना प्राधिकरण कोई दिलचस्पी नहीं लेता और अगर परियोजना में उन्हें कोई काम मिल भी जाता है तो हकीकत यह है कि उन्हें पुरुषों के बराबर काम करने के बावजूद अपेक्षया कम मजदूरी मिलती है।

आलम यह होता है कि अपने परिवार की जरूरतें पूरी करने के लिए इन औरतों को सस्ते श्रम के रूप में घरेलू नौकरानी या दिहाड़ी मजदूर बनने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसलिए प्रस्तावित कानून में ऐसा प्रावधान किया जाए जो विस्थापित महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर सृजित कर सके। हालांकि कुछ परियोजनाओं में इनकी रोजगार संबंधी आवश्यकताओं के मद्देनजर इन्हें सिलाई, कढ़ाई, सूत कातने, फाइल बनाने जैसी गतिविधियों द्वारा रोजगार प्रदान करने की कोशिश की गई। पर ये कोशिशें बहुत नाकाफी रही हैं।

छठी समस्या नई जगह में बुनियादी सुविधाओं से जुड़ी होती है। अक्सर विस्थापन के बाद बुनियादी सुविधाओं का अभाव झेलना पड़ता है। सरदार सरोवर बांध परियोजना के संदर्भ में हुए शोध बताते हैं कि पुनर्वास स्थल में किस प्रकार पोषक आहार और चिकित्सीय सुविधाओं के अभाव में हजारों विस्थापित माताओं ने अपने शिशुओं को कोख में ही खो दिया और अनेक बच्चे पांच वर्ष के होते-होते मौत के मुंह में चले गए। अतीत के इन दुर्भाग्यपूर्ण अनुभवों को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि नए भूमि अधिग्रहण कानून द्वारा पुनर्वास स्थल में स्वच्छ पेयजल, पोषक आहार, चिकित्सा सुविधाओं, बिजली, स्कूल, आंगनबाड़ी आदि की अनिवार्य व्यवस्था की जाए।

हमारे नीति निर्माताओं की मुश्किल यह रही है कि वे मुख्यतः पुरुष-केंद्रित समाधान तैयार कर इसे सबके लिए उपयोगी और न्यायपूर्ण मान लेते हैं। ऐसे समाधानों की तुलना उन तथाकथित 'सार्वजनिक' खुले पेशाबघरों से की जा सकती है जो सड़कों के किनारे बने होते हैं। उन्हें नाम तो सार्वजनिक दे दिया जाता है, लेकिन अलग व्यवस्था न होने से औरतें इनका उपयोग नहीं कर पातीं। क्या नीति-निर्माता महिलाओं की यह पीड़ा महसूस नहीं कर सकते? औपनिवेशिक जमाने में बने कानून के एक सौ उन्नीस बरस बाद भूमि अधिग्रहण संबंधी कानून नए सिरे से बनने जा रहा है तो यह उम्मीद क्यों न की जाए कि नया कानून लैंगिक पूर्वग्रह से मुक्त होगा। क्या यह कोई नाजायज मांग है?

जनसत्ता 29.4.2013

शोषण के हथकंडे

समांतर संसार

सय्यद मुबीन जेहरा

समाज में जब भी किसी हादसे या प्रकरण के जरिए अंधविश्वास के पनपने का पता चलता है तो स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उसका मुख्य शिकार महिला होती है। सदियों से अंधविश्वास और शोषण का एकमात्र शिकार स्त्री रही है। इतिहास पर नजर डालें तो अंधविश्वास महिलाओं के लिए एक सामाजिक कोढ़ साबित हुआ है। समाज में इसका इस्तेमाल अनेक प्रकार से महिला-विरोधी अभियान के रूप में, हमेशा से उसको दबाने और सामाजिक तौर पर पीछे रखने के लिए किया गया है। मध्यकालीन यूरोप में डायन बता कर महिलाओं की हत्या खुलेआम प्रचलन में थी। वहां जिन महिलाओं को डायन करार दिया जाता था, उन्हें समाज और धर्म की दुश्मन बता कर एक सोची-समझी योजना के तहत उनका शोषण किया जाता था। ज्यादातर मामलों में उनकी हत्या कर दी जाती थी।

डायन साबित करके महिलाओं का सामाजिक रूप से बहिष्कार भी किया जाता रहा है। उनका शोषण करने के लिए निंदनीय लांछन लगाए जाते रहे हैं, जैसे डायन, चुड़ैल, भूतनी। आज भी जब हम शहरों में महिलाओं के प्रति बढ़ते जुर्म से चिंतित हैं, कहीं किसी गांव में महिला को डायन बता कर उसके सामाजिक बहिष्कार या फिर हत्या की खबरें आ जाती हैं।

सबसे अधिक चिंता का विषय है कि किसी महिला को डायन बता कर उसका उत्पीड़न होता है, हत्या कर दी जाती है, पर उसे अपराध न मान कर सामाजिक प्रथा कहा जाता है। एक महिला को डायन बता कर खुलेआम नंगा घुमाया जाता है, उसे अपमानित करके 'इंसाफ' देने की बात की जाती है। एक औरत पर समाज चुड़ैल, भूतनी, डायन जैसे लांछन लगा कर उसका शोषण करता है।

एक अनुमान के मुताबिक छत्तीसगढ़ और झारखंड जैसे राज्यों में हर साल कम से कम सौ महिलाएं डायन करार दी जाती हैं और उनके साथ अमानवीय व्यवहार होता है। इसमें उनका सिर मुंड़वाना, नंगा और मुंह काला करके घुमाना जैसे दंड शामिल हैं। ऐसे दंड के चलते अक्सर उनकी मृत्यु भी हो जाती है। जब किसी महिला का मुंह काला होता है तो केवल उसका नहीं, पूरे समाज का मुंह काला होता है।

एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर साल औसतन सौ से डेढ़ सौ महिलाएं डायन या चुड़ैल बता कर मार दी जाती हैं। झारखंड में सबसे अधिक ऐसे मामले सामने आते हैं। हरियाणा में हर साल औसतन पच्चीस से तीस, ओड़ीशा में चौबीस से अट्ठाईस और आध्रं प्रदेश में तीस के आसपास महिलाओं की हत्या हो जाती है।

इस सामाजिक कुप्रथा की वजहें हमारे समाज में ही मौजूद हैं और अगर इन हादसों का अध्ययन किया जाए तो इनके अनेक आपराधिक कारण भी हैं। अक्सर देखा गया है कि महिला को संपत्ति से बेदखल करने के लिए ऐसे हथकंडे सामंतवादी समाज में सदियों से इस्तेमाल होते रहे हैं। अगर किसी महिला को पारिवारिक संपत्ति से दूर करना है तो उसे डायन बता कर उसके अधिकार से वंचित किया जाता है। कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं ने तो उन दवाइयों पर भी शोध किया है, जो इन महिलाओं को जबरन या चुपचाप खिलाई जाती हैं, जिससे उनका मानसिक संतुलन डगमगा जाता है। इससे उन्हें डायन साबित करने में मदद मिलती है।

महिलाओं को डायन बताने के कारणों का निरीक्षण करें तो उसमें सबसे प्रमुख उनका पितृसत्ता और सामंतवादी समाज में महिला होना है। महिला अपने परिवार की संपत्ति की इकलौती वारिस है, तो उसके डायन करार दिए जाने की आशंका अधिक बढ़ जाती है। पितृसत्तात्मक समाज में एकल और स्वतंत्र महिला खतरा होती है और समाज के कुछ ठेकेदार उसके तत्काल बहिष्कार के लिए उस पर डायन, चुड़ैल जैसे लांछन लगा देते हैं। इन षड्यंत्रों में महिला के परिवार के लोग भी सम्मिलित होते हैं।

'डायन प्रथा' इस बात का प्रमाण है कि समाज में जो भी बुराइयां हैं उनका ठीकरा स्त्रियों के सिर पर ही फोड़ा जाता है। ऐसी अमानवीय प्रथा के चलते दूर-दराज के गांवों में महिलाओं पर क्या बीतती होगी, यह सोच कर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड्स ब्यूरो के अनुसार 2011 में भारत में दो सौ तैंतालीस महिलाओं को डायन बता कर उनकी हत्या कर दी गई। 2012 में करीब पचास ऐसी महिलाएं, जो अकेली रहती और स्वतंत्र जीवन गुजार रही थी, उनकी हत्या डायन बता कर कर दी गई। महिलाओं से जुड़े दूसरे मामलों की तरह इसमें भी मुकदमा दर्ज नहीं किया जाता और इसे प्रथा की दुहाई देकर ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है।

जरूरत है कि ऐसी अमानवीय प्रथा के खिलाफ सरकार तत्काल सख्त कानून लाए और उस पर अमल सुनिश्चित हो। यह चिंता का विषय इसलिए भी है कि महिलाओं के खिलाफ इस हथकंडे का इस्तेमाल समाज में उनको हाशिए पर रखने के लिए एक औजार की तरह किया जा रहा है और समाज की अन्य महिला-विरोधी गतिविधियों में सबसे डरावनी और शर्मनाक घटना है।

ऐसी अमानवीय प्रथा को बढ़ावा देने में हमारे बॉलीवुड का भी बड़ा योगदान है, जहां आमिर खान जैसे सामाजिक रूप से सचेत अभिनेता की फिल्मों में महंगाई भी डायन ही नजर आती है! हाल ही में आई फिल्म 'एक थी डायन' भी समाज में महिला को एक ग्लैमर वाली डायन के रूप में प्रस्तुत करता है। कुछ गाने जैसे 'जा चुड़ैल' पर आपत्ति जतानी चाहिए। जैसे फिल्मों में सिगरेट पीने पर वैधानिक चेतावनी दिखाई जाती है उसी प्रकार महिलाओं के लिए डायन, चुड़ैल और भूतनी जैसे शब्दों के प्रयोग पर रोक लगनी चाहिए। हमने देखा है कि फिल्मों में अक्सर अभद्र भाषा के प्रयोग पर संवाद को खामोश कर दिया जाता है, उसी प्रकार अगर महिलाओं के प्रति आपत्तिजनक शब्द प्रयोग किया जा रहा है तो सेंसर बोर्ड और सरकार को उसे खामोश करने का आदेश देना चाहिए।

वित्तमंत्री ने ऑल वुमन बैंक का एलान किया है, यह स्वागतयोग्य कदम है। पर हमारी सरकार से अपेक्षा है कि वह समाज में महिलाओं के प्रति सदियों से चली आ रही कुरीतियों का आंकड़ा तैयार कर उनके खिलाफ भी सख्त कानून बनाए और समाज की जननी को डायन, भूतनी और चुड़ैल बनने से रोका जाए। अब समाज में केवल महिलाओं के प्रति सहानभूति जाताना काफी नहीं है। इस सहानुभूति के साथ उनकी अस्मिता और इज्जत का भी ध्यान देना होगा।

चिंता का विषय है कि किसी महिला को डायन बता कर उसका उत्पीड़न होता है, हत्या तक कर दी जाती है, पर उसे अपराध न मान कर सामाजिक प्रथा कहा जाता है। एक औरत पर समाज चुड़ैल, भूतनी, डायन जैसे लांछन लगा कर उसका शोषण करता है।

जनसत्ता 12.5.2013

घृणा और हिंसा के बीच सद्भाव की आवाज

हर्ष मंदर
डायरेक्टर, सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज
manderharsh@gmail.com

इंजीनियर को भारत में समाज सुधारकों की एक लंबी परंपरा विरासत में मिली थी, जिनमें गांधी और मौलाना आजाद भी शामिल थे। वे भीतर से एक साथ गहन धार्मिक और पक्के धर्मनिरपेक्ष भी थे।

देश एक बार फिर साम्प्रदायिक रूप से विभाजनकारी सार्वजनिक बहस की ओर बढ़ रहा है। अगले साल आम चुनाव तक ऐसी बहस चलती रहेगी। ऐसे समय में, हमें समाज सुधारक और विद्वान असगर अली इंजीनियर की शांत और सौम्य आवाज याद आती है, जो कुछ समय पहले हमें छोड़ गए। कई दशकों तक संघर्ष और व्यापक हिंसा के समय में उनकी संवेदना और तर्कभरी सधी हुई आवाज हमें गंभीर बना देती थी। उनके विश्वासों के कारण, इंजीनियर को नियमित तौर पर मौत की धमकी, प्राणघातक हमले और सामाजिक बहिष्कार की धमकियों का सामना करना पड़ा। इस असाधारण मानवीयता, गरिमा, बुद्धि और दृढ़निश्चय के साहस वाले व्यक्ति के जाने से देश बहुत निर्धन हो गया है।

उन्होंने अपना ज्यादातर वयस्क जीवन एक नहीं बल्कि तीन युद्ध वीरतापूर्वक लड़ने को समर्पित किया। पहला, विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच शांति और सद्भाव को बढ़ावा देने, धार्मिक घृणा और हिंसा के खिलाफ था। दूसरा, बोहरा समुदाय, जिसमें वे जन्मे थे, के नेता के उत्पीड़न के खिलाफ आजीवन, दर्दभरा अकेला संघर्ष। और तीसरा, एक मानवीय शांतिपूर्ण, सहिष्णु और लैंगिक-न्याय वाले इस्लाम के सन्मार्ग को अपनाना।

इंजीनियर को भारत में समाज सुधारकों की एक लंबी परंपरा विरासत में मिली थी, जिनमें गांधी और मौलाना आजाद भी शामिल थे। वे भीतर से एक साथ गहन धार्मिक और पक्के धर्मनिरपेक्ष भी थे। दोनों में उन्हें कोई विरोधाभास भी नजर नहीं आता था। इंजीनियर का मानना था कि कोई भी सच्चा धर्म आपको अन्य धर्मों के लोगों के खिलाफ नफरत, पूर्वग्रह या हिंसा कभी नहीं सिखा सकता।

उनके पिता एक बोहराआमिल या प्रीस्ट थे। स्थानीय बोहरा समाज को धार्मिक मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए मध्य प्रदेश के कई शहरों में उनकी नियुक्ति हुई। उन्होंने उनसे इस्लामी धर्मशास्त्र और इतिहास सीखा। अपनी आत्मकथा 'अ लिविंग फेथ' में इंजीनियर याद करते हैं कि विद्यार्थी के रूप में वे शुरू में रूढ़िवादी थे। लेकिन देवास में शमासाहेब जैसे शिक्षकों ने उनके दिल और दिमाग खोलने में मदद की। उनके शिक्षक 'पक्के मुस्लिम विश्वासी थे लेकिन संकीर्ण विचारों से वे बहुत दूर थे, बहुत कम साम्प्रदायिक। उन्होंने हमें अच्छा मुसलमान होने और कभी रूढ़िवादी न होने की प्रेरणा दी।'

एक और प्रभाव था, मार्क्सवादी लेखन से उनका सामना, जिसने उन्हें अंदर तक हिला दिया। उन्होंने अपनी धार्मिक आस्था और नई मार्क्सवादी प्रतिबद्धता के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघर्ष किया। उन्हें कवि इकबाल के शब्दों में तसल्ली मिली कि समाजवाद, खुदा के साथ मिलकर इस्लाम बना है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मार्क्सवादी होने के लिए नास्तिक होना जरूरी नहीं है। मार्क्स और उनके धार्मिक विश्वास दोनों ने न्याय, समानता और दूसरों के लिए करुणा के मूल्यों को सींचा है। इंजीनियर ने 70 से ज्यादा किताबें लिखी हैं, उनकी किताबों और जीवन से इस्लाम के बारे में इंजीनियर का विश्लेषण मिलता है। वे भारतीय इस्लाम में मुक्ति धर्मशास्त्र के एक रचनात्मक निर्माण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वे अभी इंजीनियरिंग के विद्यार्थी ही थे कि 1961 में जबलपुर में विभाजन के बाद के पहले साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे जिन्होंने नेहरू को स्तब्ध और दुखी कर दिया। इंजीनियर ने तब कसम खाई कि वे लगातार होने वाले दंगों का अध्ययन कर न केवल साम्प्रदायिकता की समस्या को समझेंगे बल्कि देशभर में साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़ाने के लिए बोलेंगे और लिखेंगे। हालांकि वे बीस साल तक बंबई नगर निगम में इंजीनियर रहे, उन्होंने देश के हर बड़े दंगे वाली जगह पर जाने के लिए समय निकाला। निडरता से पक्षपाती सरकारी अधिकारियों, साम्प्रदायिक संगठनों तथा पीड़ितों के राहत कार्य चलाने वालों की भूमिका का पर्दाफाश किया।

जबलपुर के बाद अगले बड़े दंगे 1969 में अहमदाबाद में हुए, जहां से उन्होंने भीषण ज्यादतियों की रिपोर्टिंग की। अगले साल भिवंडी जला। इंजीनियर ने बंबई नगर निगम से अवकाश लिया और अपने अभिनेता मित्र बलराज साहनी को फिल्मों से छुट्टी दिलवाकर 15 दिन तक भिवंडी में डेरा डाला। मई की गर्मियों में दोनों ने भिवंडी कस्बे और ग्रामीण इलाके में लोगों से शांति की अपील की। जब मुंबई लौटे तो उनकी शांति अपील में कई अभिनेता और कवि भी शामिल हो गए। अपने अंतिम दिनों तक इंजीनियर के जीवन का यही उद्देश्य रह गया था। मुझे संदेह है कि उनके जैसा कोई दूसरा भी होगा जो बिना थके स्वतंत्र भारत में दंगे वाली हर जगह गया हो, उसकी व्यथा बताने और शांति की अपील करने।

दूसरा संघर्ष जिसने उन्हें थकाया, वह बोहराओं के शीर्ष धर्मगुरु के खिलाफ था। सैयदना का बोहराओं के धार्मिक और सामाजिक मामलों में एकाधिकार है। इंजीनियर ने जब समाज में सुधार की आवाज उठाई तो परिणामस्वरूप सैयदना ने उनके सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर दी। सभी बोहराओं को आदेश दिया गया कि उनका सामाजिक बहिष्कार करें। उन पर आधा दर्जन से ज्यादा बार हमले हुए। उनकी मृत्यु में भी, वे निर्वासन में थे, उन्हें बोहरा कब्रिस्तान में दो गज जमीन भी नहीं दी गई, उन्हें सुन्नी कब्रिस्तान में चैन की नींद सुलाया गया।

उन्होंने इस्लामी कट्टरपंथियों से भी बहादुरी से जंग लड़ी। उन्होंने कई बार मुस्लिम धर्मगुरुओं के खिलाफ तलवार निकाली। इसमें 1986 का तलाकशुदा शाहबानो के गुजारे भत्ते के अधिकारों के लिए आध्यात्मिक समर्थन भी शामिल है। हालांकि मुस्लिम धर्मगुरुओं ने इसे गैर इस्लामी बताया लेकिन उन्होंने राजीव गांधी से उनके अधिकारों की रक्षा की मांग की। उन्होंने कहा, जिहाद कुछ भी नहीं है केवल न्यायोचित दुनिया के लिए एक निरंतर संघर्ष है और यह कभी भी हिंसक नहीं हो सकता। उनका विश्वास है कि सभी धर्म विवेक, निर्भयता और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता के साथ ही मानव एकता की स्वतंत्रता का जनादेश भी देते हैं।

अपनी आत्मकथा में इंजीनियर ने कवि रूमी को उद्धृत किया है, 'बिना प्यार के दिल कुछ नहीं सिर्फ मुट्ठी भर रेत है।' इंजीनियर की जिंदगी हर तरह से शांति के प्रति समर्पित रही।

दैनिक भास्कर 19.6.2013

वीना दी

निनाद

कुलदीप कुमार

बृहस्पतिवार को सुबह-सुबह मोबाइल फोन पर इंद्राणी का संदेश मिला तो पता चला कि जिस बात की आशंका थी, वह घटित हो ही गई। जिंदगी भर लुढ़कती रहने वाली वीना दी (वे उम्र के अंतराल के बावजूद सबके लिए वीना दी ही थीं) का लुढ़कना रुक गया। तीन साल पहले उनकी किताब आई थी 'एक लुढ़कते पत्थर के संस्मरण'। इसमें उनके जीवन भर के खट्टे-मीठे अनुभवों को बहुत सहज और विनोदप्रिय अंदाज में सामने रखा गया था। कलकत्ता (अब कोलकाता) के डायोसेसियन गर्ल्स स्कूल से लेकर ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय, पटना, दिल्ली, शिमला और बहरमपुर के बीच भटकते रहने के कारण शायद उन्होंने अपनी किताब को यह शीर्षक दिया था। उनके निधन ने उनके परिवार के सदस्यों और दुनिया भर में फैले प्रशंसकों के दिलों पर जो पत्थर रख दिया है, वह भी अब कभी नहीं लुढ़केगा।

उन्हें पहले-पहल देखा था 1973 में, लेकिन पहली बार मिला 1981 में। 1973 की धुंधली-सी याद है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय उस समय पुराने कैंपस में होता था। चारों तरफ का इलाका एकदम सुनसान था। पुराने कैंपस के गेट के ठीक सामने सड़क पार एक ढाबा था। रात में कोई आठ बजे वीना दी वहां अपने परिवार के साथ आई थीं। उनकी बेटी इंद्राणी मजूमदार जेएनयू में पढ़ती थी और माकपा से जुड़े छात्र संगठन एसएफआइ की बहुत जुझारू नेता थी। उसकी सबसे छोटी बहन टुटुल और सबसे छोटा भाई जूलस भी आए थे- फ्रॉक और निकर में। तब किसे पता था कि टुटुल यानी रंजनी जेएनयू में ही प्रोफेसर बनेगी और जूलस यानी सुरजीत अर्थशास्त्री के रूप में नाम कमाएगा। वीना दी की सबसे बड़ी बेटी शास्वती दिल्ली विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा और साहित्य की प्रोफेसर है। बौद्धिकता इस परिवार के डीएनए में है। अपने समय के शीर्षस्थ इतिहासकार रमेशचंद्र मजूमदार वीना दी के सगे चाचा थे।

वीना दी यानी वीना मजूमदार से मेरी दो या तीन मुलाकातें ही हुईं। बातचीत भी बहुत अधिक नहीं हुई। लेकिन उनके बारे में पिछले चालीस सालों में इतना सुना कि हमेशा लगा कि मैं उन्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूं। ऐसे दिन गिनती के ही होंगे जब हमारे घर में किसी न किसी प्रसंग में उनका जिक्र न हुआ हो। उनके जाने के बाद भी उनकी उपस्थिति हमेशा बनी रहेगी। 1970 के दशक में जब उन्होंने महिलाओं की पहली पत्रिका 'मानुषी' की स्थापना में सक्रिय भूमिका निभाई और उसकी प्रकाशक बनीं, तब मेरी पत्नी इन्दु अग्निहोत्री (जो उस समय पत्नी नहीं, मित्र थीं) उसके प्रथम संपादक मंडल की सदस्य थीं। बाद में ये लोग उससे अलग हो गए लेकिन इन्दु और वीना दी के बीच तब बने संबंध की घनिष्ठता और आत्मीयता लगातार बढ़ती गई। जिस 'सेंटर फॉर वीमेंस डेवलपमेंट स्टडीज' (महिला विकास अध्ययन केंद्र) की वे संस्थापक-निदेशक थीं (आज भी अक्सर लोग उसे वीना मजूमदार का सेंटर कहते हैं, उसी तरह जैसे अनेक वर्षों तक 'सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज' को लोग रजनी कोठारी का सेंटर कहा करते थे), आज इन्दु उसी की निदेशक है। वाम रुझान के महिला आंदोलन में तो वह शुरू से सक्रिय रही लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में इतिहास पढ़ाना छोड़ कर स्त्री-अध्ययन के क्षेत्र में आने के पीछे मुख्य प्रेरणा वीना दी की ही थी।

वीना दी के बारे में मैं कुछ लिखना चाहता हूं, पर क्या लिखूं? सब जानते हैं कि भारत में महिलाओं की स्थिति पर अध्ययन करने और करवाने में उनका अप्रतिम योगदान है, नारी आंदोलनों की सिद्धांतकार और व्याख्याकार के रूप में भी उन्हें अंतरराष्ट्रीय ख्याति मिली, उन्होंने महिला विकास अध्ययन केंद्र (सेंटर फॉर वीमेंस डेवलपमेंट स्टडीज) की स्थापना की और उसकी पहली निदेशक के रूप में उसके विकास को दिशा दी। प्रसिद्ध विधिवेत्ता लतिका सरकार के साथ मिल कर उन्होंने 'समता की ओरः भारत में महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति की रिपोर्ट' (1974-75) लिखी, जो आज भी अपनी तरह की एकमात्र रिपोर्ट मानी जाती है। लतिका सरकार का भी इसी वर्ष जनवरी में निधन हुआ। लगभग पंद्रह साल पहले वीना दी, लतिका सरकार और सेंटर के अन्य कई लोग हमारे घर दोपहर के खाने पर आए थे। बस वही एकमात्र अवसर था जब वे हमारे घर आईं।

वीना दी की बौद्धिक उपलब्धियां और महिला आंदोलन और अध्ययन को उनका योगदान तो सबके सामने है। लेकिन उनके बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात मुझे हमेशा यही लगी कि उनमें दूसरों को प्रेरित करने की अद्‌भुत क्षमता थी।

मैं भी एक ही बार उनके घर गया। लगभग अठारह साल पहले। किसी का जन्मदिन था। किसका था, यह ठीक से याद नहीं। शायद इंद्राणी और सीताराम येचुरी के बेटे का था। तब पहली और अंतिम बार मेरी वीना दी के पति शंकर मजूमदार से मुलाकात हुई। वे बहुत गंभीर प्रकृति के अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति थे। बहुत कम लोगों के साथ खुलते थे। वीना दी की और इंद्राणी समेत पूरे परिवार की नजर में अचानक मेरा दर्जा काफी बढ़ गया जब उन्होंने देखा कि कुछ ही देर में हम दोनों बहुत घुल-मिल कर बातें करने लगे हैं। हुआ यों कि न जाने कैसे शुरुआती औपचारिक बातचीत में किसी तरह से संगीत का जिक्र आ गया। उन्हें मेरी रुचि का पता चला तो वे बहुत सहजता के साथ बात करते गए। शेष सब यह नजारा देखकर हैरान थे।

अपने संस्मरणों में वीना दी ने बताया है कि शंकर मजूमदार के साथ उनकी मुलाकात कैसे हुई। ऑक्सफर्ड से लौट कर 1951 में वीना मजूमदार ने पटना विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग में पढ़ाना शुरू कर दिया। उस दौर के उनके शुरुआती छात्रों में पूर्व विदेश सचिव मुचकुंद दुबे भी थे। शंकर मजूमदार के पिता सौरीन्द्र नाथ मजूमदार पटना के बहुत मशहूर डॉक्टर थे और उन्होंने पिछली सदी के आरंभिक वर्षों में वहां रॉयल फार्मेसी नाम की पहली आधुनिक उपकरणों से युक्त फार्मेसी खोली थी। पता चला कि शहर में रविशंकर के सितारवादन का कार्यक्रम है। क्योंकि वीना मजूमदार के एक भाई की रविशंकर के साथ दोस्ती थी, इसलिए उनकी सहेलियों ने उन्हें ही कार्यक्रम के पास हासिल करने का जिम्मा सौंप दिया। मालूम हुआ कि रविशंकर रॉयल फार्मेसी में ठहरे हैं। क्लास लेकर थकी-हारी वीना मजूमदार जब वहां पहुंचीं तो दोनों शंकर गायब थे। शंकर मजूमदार की मां ने बहुत ममता के साथ उन्हें चाय-नाश्ता कराया। जब दोनों शंकर वापस आए तो रविशंकर ने वीना को छेड़ा कि पहली बार आईं और आते ही गपागप खाने भी लगीं।

शंकर मजूमदार अमीर खां के गाने के आशिक थे और उनसे लंबे परिचय के बावजूद सिखाने का अनुरोध करने में हिचकिचा रहे थे। रविशंकर के कहने पर यह काम वीना मजूमदार ने किया और इसके बाद अमीर खां ने अपनी उस समय की पत्नी मुन्नीबाई को गंडाबंधन की रस्म पर बुलाया। शंकर ने बहुत देर से गाना सीखना शुरू किया था इसलिए सफल मंचीय गायक बनने की उनकी अभिलाषा तो पूरी न हो सकी, लेकिन वे अमीर खां की गायनशैली के मर्मज्ञ व्याख्याता और शिक्षक अवश्य बन गए। शायद बहुत कम लोगों को मालूम हो कि प्रसिद्ध सितारवादक उमाशंकर मिश्र को रविशंकर से मिलाने वाले और उनका शिष्य बनवाने वाले शंकर मजूमदार ही थे। इंद्राणी ने कई बार मुझसे कहा कि तुम बाबा से बातें करके उनके संस्मरण लिपिबद्ध करो। मैंने बहुत बार ऐसा करने की मन में ठानी भी, लेकिन अक्सर यह होता है कि जिस काम को करने की हममें सबसे अधिक इच्छा होती है, उसी को हम सबसे ज्यादा टालते रहते हैं। मुझे आज भी बहुत अफसोस है कि मैं यह काम नहीं कर पाया।

वीना दी को ऑक्सफर्ड जाने की अनुमति इसलिए मिल सकी क्योंकि परिवार के एक मित्र प्रोफेसर राधाकृष्णन ने आश्वासन दिया कि वे 'लड़की पर निगाह रखेंगे'। अक्तूबर, 1947 में वीना मजूमदार ने ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय के सेंट ह्यूज कॉलेज में दाखिला लिया। तीस जनवरी, 1948 को ऑल सोल्स कॉलेज में प्रोफेसर राधाकृष्णन के कक्ष में उन्हें चाय पीने बुलाया गया था। वहां पहुंचते ही पता चला कि महात्मा गांधी की हत्या हो गई है और प्रोफेसर राधाकृष्णन- जिन्हें सब एसआर बुलाते थे- ने अपने-आपको कमरे में बंद कर लिया है और वे किसी की भी बात का जवाब नहीं दे रहे। थोड़ी देर में सैयद नुरुल हसन (प्रसिद्ध इतिहासकार, जो इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में शिक्षामंत्री रहे) के साथ भारतीय छात्रों का एक समूह आया, पर वे भी दरवाजा खुलवाने में नाकाम रहे। अंततः कॉलेज के वार्डेन को बुलाया गया और तब किसी तरह कमरे का दरवाजा खुला। ये एसआर भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे।

मुझे बहुत कम व्यक्ति ऐसे मिले हैं जिन्हें वास्तव में 'प्रेरक व्यक्तित्व' कहा जा सके। वीना दी की बौद्धिक उपलब्धियां और महिला आंदोलन और अध्ययन को उनका योगदान तो सबके सामने है। लेकिन उनके बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात मुझे हमेशा यही लगी कि उनमें दूसरों को प्रेरित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। यही कारण है कि भारत ही नहीं, अनेक देशों में विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े उनके प्रशंसक उन्हें याद कर रहे हैं। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

जनसत्ता 2.6.2013

शर्मिला रेगे (1964—2013)

दुष्कर्म के खिलाफ सख्त कानून लाने वाले जस्टिस वर्मा नहीं रहे

गुड़गांव में रात 10:30 बजे निधन, कई दिनों से बीमार थे

एजेंसी | नई दिल्ली

सुप्रीम कोर्ट के 27वें चीफ जस्टिस जेएस वर्मा नहीं रहे। 80 वर्ष की उम्र में सोमवार रात 10:30 बजे गुड़गांव के मेदांता अस्पताल में उनका निधन हो गय। सुप्रीम कोर्ट के नौ साल के सेवाकाल में जस्टिस वर्मा ने 470 से अधिक फैसले सुनाए। इनमे कई मील के पत्थर साबित हुए।

जस्टिस वर्मा हाल में उस समय चर्चा में आए, जब केंद्र ने 16 दिसंबर की घटना के बाद दुष्कर्म के खिलाफ कानून के लिए उनकी अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई। महज 29 दिनों में उन्होंने कई सख्त कानूनों की सिफारिशों के साथ रिपोर्ट सौंप दी थी। वे न्यूज ब्रॉडकास्टिंग स्टैंडर्ड अथॉरिटी ऑफ इंडिया के चेयरमैन भी थे।

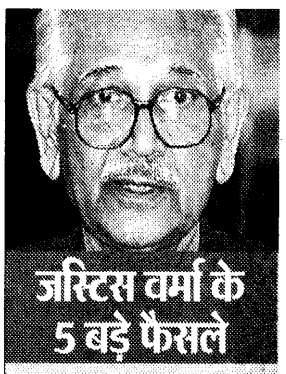

जस्टिस जगदीश शरण वर्मा की स्कूली शिक्षा मप्र के सतना में हुई थी। 1955 में रीवा में विंध्यप्रदेश ज्यूडिशयल कमिश्नर कोर्ट से काम शुरू किया। 12 सितंबर 1973 को मप्र हाईकोर्ट में ही एडिशन जज बनाए गए। 1985 में मप्र हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस बने। 1997 में जस्टिस वर्मा को सुप्रीम कोर्ट का चीफ जस्टिस बनाया गया। वहां से 17 जनवरी 1998 को वे सेवानिवृत्त हो गए।

जस्टिस वर्मा के 5 बड़े फैसले

1. ऐतिहासिक विशाखा फैसला। इसी के बाद सरकार ने कार्यस्थल पर महिला सुरक्षा दिशा-निर्देश तय किए।
2. 1994 में एसआर बोम्मई मामले में राष्ट्रपति के विधानसभा भंग करने के अधिकार को परिभाषित किया।
3. आर्म्स एक्ट के तहत 1997 में संजय दत्त के खिलाफ फैसला सुनाया।
4. 1993 में निलावती बेहरा की चिट्ठी को पीआईएल मानते हुए फैसला सुनाया।
5. 1994 में जमाते इस्लामी को गैरकानूनी घोषित करने के सरकार के फैसले को खारिज कर दिया।

दैनिक भास्कर 23.4.2013

देखी सुनी – मुख्य हिंदी समाचार पत्रों में छपने वाले महिला मुद्दों से सम्बन्धित खबरो व लेखो का त्रैमासिक संकलन है। संकलित लेखों में व्यस्त विचार लेखकों के निजी विचार है, ज़रुरी नही यह हमारी संस्थागत सोच व क्रियांवयन को दर्शाते हो।

जागोरी JAGORI

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें—
जागोरी, बी—114, शिवालीक, मालवीय नगर, नई दिल्ली—110017,
फ़ोनः 011—26691219, 26691220
email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org,www.jagori.org

Bread for the World, Misereor के सहयोग से प्रकाशित